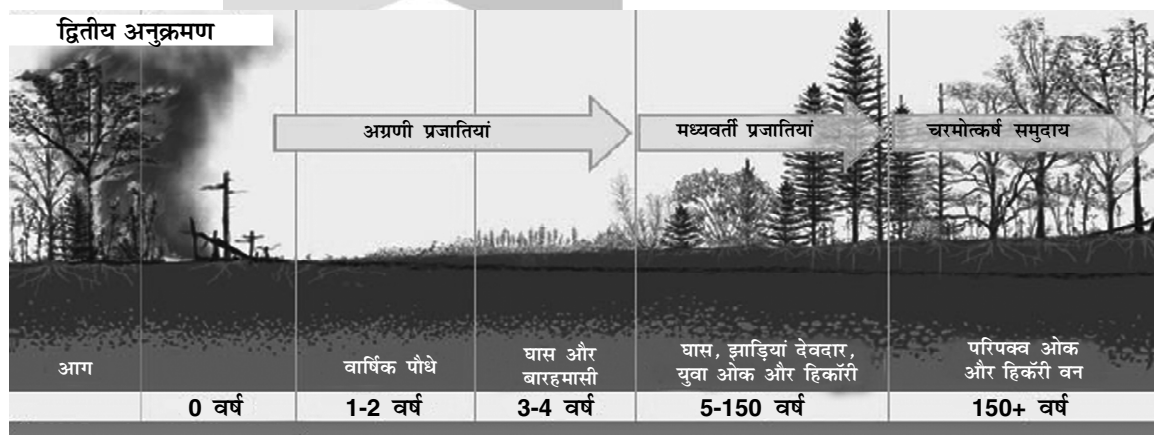


5. इस क्रमक अर्थात् वनस्पति के सघन हो जाने पर स्थान, प्रकाश, जल तथा पोषक तत्वों की प्राप्ति के लिए पादपों में आपसी प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो जाती है। स्मरणीय है कि यदि आवास में एक ही जाति का विकास होता है तो उस जाति के विभिन्न सदस्यों के मध्य उपर्युक्त तत्वों की प्राप्ति की होड़ लग जाती है तथा इस प्रतिस्पर्धा के दौरान समर्थ पादप ही रह पाता है। तथा कमजोर पादप समाप्त हो जाते हैं परन्तु जाति रक्षित रहती है। यदि उस आवास में एक से अधिक जातियों का विकास होता है तो उनके सदस्यों के बीच प्रतिस्पर्धा होने से सबसे समर्थ तथा आक्रामक जाति का पूरे वनस्पति समुदाय में स्वामित्व तथा प्रभुत्व हो जाता है, परन्तु यदि विभिन्न जातियों समान रूप में सामर्थ्यवान होती हैं तो उनमें प्रतिस्पर्धा होने पर भी संतुलन बना रहता है तथा सभी जातियां संरक्षित रहती हैं। इस अवस्था में शाक समुदाय का विकास होता है।
6. समय के साथ आगे बढ़ने पर उक्त आवास में बड़ी झाड़ियों का विकास होता है तथा शाक समुदाय का स्थान झाड़ी समुदाय ले लेता है। समीपी भाग से पुष्पी पौधों के बीज हवा द्वारा उड़कर इस आवास में आ जाते हैं तथा झाड़ियों के बीच छिट-पुट रूप में वृक्षों का जन्म तथा विकास होता है जिस कारण इनका आवरण झाड़ियों से ऊंचा हो जाता है। इसे वन समुदाय कहते हैं। इस क्रमक को वनस्पति समुदाय-विकास का पूर्व चरम कहते हैं।
7. अंत में वृहदाकर तथा ऊंचे वृक्षों का जन्म तथा विकास होता है। इनकी संख्या बढ़ती जाती है तथा समस्त आवास

में घने एवं ऊंचे वृक्षों का आवरण हो जाता है। इनकी जड़ें धरातल में काफी गहराई तक पहुंच जाती हैं। मिट्टियों का अत्यंत गहराई तक विकास होता है एवं उनकी (मिट्टियों) विभिन्न परिच्छेदिकाओं का विकास हो जाता है। मिट्टियों में कई प्रकार के जीवों का विकास होता है जो मुख्य रूप से ऊर्जा स्थानान्तरण तथा वियोजन का कार्य करते हैं। इस अंतिम समुदाय या चरम समुदाय, चरम, अनुक्रम, जलवायु चरम, चरम वनस्पति भी कहा जाता है। यह स्थिति प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र की होती है। वनस्पति समुदाय के प्राथमिक अनुक्रम का उपर्युक्त उदाहरण स्थलीय आवास से संबंधित है। वनस्पति समुदाय का प्राथमिक अनुक्रम लगभग 100 वर्षों में विकसित हुआ है।

द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary Succession)

जिन क्षेत्रों में पहले वनस्पति तथा वनस्पति समुदाय का विकास हुआ था परन्तु बाद में मानव हस्तक्षेपों द्वारा (यथा-वनों का काटना-जलाना, भूमि उपयोग में परिवर्तन-भारत के पहाड़ी प्रदेशों में वनों को काट कर झूमिंग कृषि या स्थानान्तरी कृषि का प्रचलन, सड़क निर्माण आदि) तथा प्राकृतिक कारणों (वनाग्नि, बाढ़, हरीकेन, सूखे का प्रकोप, भूस्खलन, जलवायु परिवर्तन आदि) द्वारा अमुक पारिस्थितिक तंत्र के आवास विशेष की वनस्पति के पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से नष्ट हो जाने पर आवास में (प्रारंभिक वनस्पति का कुछ भाग अब भी बचा रहता है) वनस्पति समुदाय के पुनः विकास को द्वितीयक अनुक्रम कहते हैं। इस तरह के आवास में अब भी प्रौढ़ मृदा आवरण मौजूद रहता है।



परिणामस्वरूप वनस्पति विकास का आरंभिक रूप प्राथमिक अनुक्रम के आरंभिक रूप से सर्वथा भिन्न होता है तथा द्वितीयक अनुक्रम में वनस्पति-समुदाय के चरम विकास का समय प्राथमिक अनुक्रम की तुलना में बहुत कम होता है।

जब किसी क्षेत्र में वनस्पति समुदाय का विकास अपनी अंतिम अवस्था द्वारा बाधित या विक्षुब्ध हो जाता है तो इस स्थिति में वनस्पति को अधोचरम वनस्पति कहते हैं। जब अमुक क्षेत्र में वनस्पति विकास से विक्षोभ दीर्घ काल तक चलता रहता है तो वनस्पति विकास की सामान्य क्रमक अवस्थाएँ नहीं होती हैं वरन् ये विक्षोभ वाले काक वनस्पति विकास की सामान्य क्रम को विक्षेपित कर देते हैं। इस विक्षेपित क्रम में जो वनस्पति होती है वह तब तक बनी रहती है जब तक विक्षोभ लाने वाले कारक क्रियाशील रहते हैं। इस तरह के विक्षेपित चरम को तथा इसके विभिन्न चरणों (विकास के) को विक्षेपित क्रम कहते हैं। कुछ समय बाद यदि विक्षोभ कारक समाप्त हो जाता है या निष्प्रभावित हो जाता है तो उस अवस्था में पर्यावरण की दशा बदल जाती है। परिणामस्वरूप बदला नया पर्यावरण विक्षेपित चरम वनस्पति का पोषण तथा रक्षण नहीं कर पाता है। अतः इस वनस्पति के स्थान पर नये पर्यावरण के अनुकूल नयी वनस्पति का विकास होता है तथा वनस्पति समुदाय का पुनः सामान्य क्रमक में विकास प्रारंभ हो जाता है।

चरम वनस्पति

किसी भी आवास में वनस्पति समुदाय के अनुक्रम की प्रक्रिया चाहे वह प्राथमिक अनुक्रम हो या द्वितीयक अनुक्रम का अंतिम बिंदु अया अंतिम चरण चरम समुदाय की स्थापना है। चरम वनस्पति किसी भी आवास के प्रौढ़ प्राकृतिक तंत्र की द्योतक होती है। वास्तव में चरम वनस्पति किसी भी आवास के प्राकृतिक पर्यावरण तथा उसकी वनस्पति के मध्य संतुलन की दशा की परिचायिका होती है।

स्वजन्य अनुक्रमण (Autogenic Succession)

परिक्षेत्र में एक जाति के स्थानपर दूसरी जाति आकर आवास बना लेती है तथा अनुक्रमण करती है। इस प्रकार स्वयं का स्वमेव परिवर्तन स्वजन्य अनुक्रमण कहा जाता है।

बाह्य प्रभावजन्य अनुक्रमण (Allogenic Succession)

इस अनुक्रमण में बाह्य प्रभाव किसी जाति के जीवों को बलात्

परिक्षेत्र बदलने के लिए उत्प्रेरित करता है। जीवों की स्वतः प्रक्रिया से उत्पन्न अनुक्रमण बाह्य अनुक्रमण कहा जाता है। वनों के कटाव, घास के मैदानों के कृषि भूमि में परिवर्तन होने जैसे बाह्य प्रभाव से पशुओं का वनों की ओर प्रस्थान होना बाह्य प्रभाव जन्म अनुक्रमण है।

स्वपोषण अनुक्रमण (Heterotrophic Succession)

किसी परिस्थान पर पहले से बसने वाले जीव विनष्ट हो जाते हैं या स्थान बदल देते हैं। ऐसी स्थिति में नवीन परिस्थिति की क्षमता के अनुरूप जीवों का आगमन हो जाता है। इसे परपोषण जन्य अनुक्रमण कहते हैं।

जब वनों को काटकर कृषि के लिए क्षेत्र विशेष को साफ किया जाता है तो प्राथमिक अनुक्रम की वनस्पतियों के कुछ अवशेष रह जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में तब तक कृषि की जाती है जब तक फसल अच्छी होती है। जब मृदा के पोषक तत्व (फसलों के लिए आवश्यक) समाप्त हो जाते हैं तो उस क्षेत्र को छोड़ दिया जाता है। (अन्य क्षेत्र के वनों को काट कर कृषि के लिए साफ किया जाता है)। इस परित्यक्त क्षेत्र में वनस्पति का द्वितीयक अनुक्रम प्रारंभ होता है जिसके आरंभिक चरण में शाकीय तृण, खर-पतवार, मोथा आदि का विकास होता है तथा शीघ्र ही छोटी-छोटी शाकीय झाड़ियों का घना आवरण विकसित हो जाता है। इस चरण या क्रमक का समय सीमित होता है क्योंकि शीघ्र ही लकड़ी वाली बड़ी झाड़ियों का विकास हो जाता है तथा छोटे पौधे दब जाते हैं। अंत में विशालकाय ऊँचे वृक्षों का घना आवरण विकसित हो जाता है तथा झाड़ियों का आवरण इनके नीचे अवरुद्ध हो जाता है।

महत्वपूर्ण तथ्य

- ☛ भारत के हिमालय-प्रदेश में मुख्य रूप से उत्तर-पूर्व अंचल में छोटे-छोटे क्षेत्रों में वनस्पतियों को काटकर स्थानान्तरित कृषि की जाती है।
- ☛ किसी भी प्रदेश में वनस्पति समुदाय के अनुक्रमिक विकास की अंतिम अवस्था में उत्पन्न वनस्पति को चरम वनस्पति कहते हैं।
- ☛ सन् 1883 में जावा एवं सुमात्रा के मध्य क्राकाटोआ द्वीप पर विस्फोटक ज्वालामुखी उद्भेदन से लावानिर्मित आवास का सृजन हुआ था।

4

सामुदायिक अन्तःक्रिया (COMMUNITY INTERACTION)



प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले सभी पौधों, जन्तुओं और सूक्ष्मजीवों का वह समूह, जो एक ही वातावरण में रहते हैं, परस्पर संबंधित होते हैं तथा एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं, वहां के जैविक समुदाय कहे जाते हैं। जैविक समुदाय का क्षेत्र बड़ा या छोटा हो सकता है।

पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न पौधे, जन्तु व सूक्ष्मजीव अपने अलग-अलग समुदाय बनाते हैं। सभी समुदायों में सभी प्रजातियां समान रूप से अभिव्यक्त नहीं होती। उनमें से कुछ दूसरी प्रजातियों पर प्रभाव होती हैं और संपूर्ण समुदाय पर अपना प्रभाव बनाये रखती हैं। इन प्रजातियों को प्रभावी प्रजातियां कहते हैं।

जैविक समुदायों में पौधे, जन्तुओं और सूक्ष्म जीवों के समुदाय, ऊर्जा संसाधन और स्थान के लिए एक-दूसरे से अन्तः क्रियाएं करते रहते हैं। पौधे जन्तुओं को भोजन और ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, जिसके बदले में जन्तुओं से उन्हें कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2) प्राप्त होती है। जन्तु पुष्पों के परागण तथा बीजों के प्रकीर्णन में भी सहायक होते हैं।

सूक्ष्मजीव, जन्तुओं व पौधों से विभिन्न प्रकार से पारस्परिक क्रियाएं करते हैं। ये जीवों में रोग उत्पन्न कर सकते हैं, नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर सकते हैं, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को कम अथवा अधिक कर सकते हैं तथा मिट्टी के कार्बनिक मृत पदार्थों को विघटित कर सकते हैं। इससे जटिल कार्बनिक अणुओं का सरल अकार्बनिक अणुओं में अपघटन हो जाता है।

अपघटित पदार्थ मृदा में पुनः चक्रण के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। सभी जीव पारिस्थितिक तंत्र के सफल संचालन में तथा

ऊर्जा के प्रवाह और पोषक तत्व के चक्रण में मुख्य भूमिका निभाते हैं। जैविक समुदाय के बीच अंतः क्रियाएं परस्पर आदान-प्रदान या लेन-देन संबंधनों को व्यक्त करती हैं। अन्तःक्रियाएं मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं- धनात्मक अन्तः क्रियाएं तथा ऋणात्मक अन्तः क्रियाएं।

सामान्य प्रकार की अन्तः क्रियाएँ

इन अन्तः क्रियाओं में दोनों सहयोगी अथवा एक सहयोगी लाभान्वित होता है परन्तु हानि किसी को नहीं होती ये निम्नलिखित हैं:

सहजीविता (Symbiosis)

जब दोनों सहयोगी समान रूप से लाभान्वित होते हैं, किसी को भी कोई हानि नहीं होती है तो इसे सहोपकारिता कहते हैं। यदि एक सहयोगी बिना दूसरे को हानि पहुंचाये ही लाभान्वित होता है तो सहभोजिता कहते हैं। यदि दोनों ही सहयोगी भौतिक संबंध स्थापित किये बिना ही परस्पर लाभान्वित होते हैं तो इसे आदि सहयोग कहते हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

- **सहोपकारिता (Mutualism)**: लाइकेन, साइकस की कोरेलाॅएड जड़ें, कवकमूल।
- **सहभोजिता (Commensalism)**: ऑर्किड, आरोही, कंठलताएं।
- **आदि सहयोग (Proto Cooperation)**: मूल-परिवेशी, सूक्ष्म वनस्पतिजात।

ऋणात्मक अन्तः क्रियाएँ

इन अन्तः क्रियाओं में एक सहयोगी अपने लाभ के लिए दूसरे को हानि पहुंचाने में संकोच नहीं करता है। ऋणात्मक अन्तः क्रियाएं निम्न प्रकार की होती हैं:

1. स्पर्धा (Competition)

दो या दो से अधिक सदस्यों के बीच स्थान, जल, खनिज, ऊर्जा एवं अन्य संसाधनों के लिए स्पर्धा रहती है। स्पर्धा दो प्रकार की होती है, अंतराजातीय स्पर्धा तथा आंतरजातीय स्पर्धा। इनमें अंतराजातीय स्पर्धा कई प्रजातियों के सदस्यों के मध्य उत्पन्न होती है, जैसे कि किसी जैव समुदाय के सदस्यों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा जबकि आंतरजातीय स्पर्धा एक ही प्रजाति के दो या दो से अधिक सदस्यों के बीच उत्पन्न होती है। अंतराजातीय प्रतिस्पर्धा, आंतरजातीय प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा कम घातक होती है।

2. विरोधी (Antagonism) अथवा प्रतिजीवित (Anti Biosis) और ऐलीलोपैथी (Allelopathy)

जटिल उपापचयी क्रियाओं द्वारा उत्पन्न वृद्धि रोधक, विषाक्त रासायनिक पदार्थों के स्राव द्वारा जब एक जीव किसी दूसरे जीव की वृद्धि को पूर्णरूप से या आंशिक रूप से रोक देता है तो उसे विरोधी अथवा प्रतिजीविता कहते हैं। इस प्रकार की अन्तः

प्रक्रियाओं में किसी जीव का कोई भी लाभ नहीं होता। उदाहरण के रूप में पेनिसिलियम क्लैडोस्पोरियम या स्ट्रेप्टोमाइसीज ऐसे सूक्ष्मजीव हैं जो अपने निकट विशेष रासायनिक पदार्थों का स्रवण करते हैं जो वहां उगने वाले अधिकांश जीवाणुओं और कवकों की वृद्धि में बाधक होते हैं। कुछ पौधों द्वारा ऐलर्जिक रसायनों का स्राव भी होता है तो प्रतिस्पर्धा पौधों की वृद्धि को रोकने में या मारने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार के प्रभाव को ऐलीलोपैथी कहते हैं। वन समुदाय में कुछ वृक्षों की जड़ें जल में घुलनशील कुछ तत्वों को स्रावित करती रहती हैं जो अन्य प्रजातियों के बीजों के अंकुरण और उनके नवोद्भिद की वृद्धि में बाधक बनते हैं। इससे अनैच्छिक वृक्षों और झाड़ियों की वृद्धि रुक जाती है।

3. परजीविता (Parasitism)

वे विषमपोषी जीव जो अपने परपोषी के शरीर से आहार प्राप्त करते हैं, परजीवी कहे जाते हैं। परजीवी विकल्पी तथा अविकल्पी दो प्रकार के हो सकते हैं। विकल्पी परजीवी मुख्यतः मृतोपजीवी होते हैं, वे विशेष परिस्थितियों में ही परजीवी बनते हैं, जैसे अधिकांश कवक या जीवाणु। अविकल्पी, परजीवी, परपोषी होते हैं। कुछ आवृतबीजी भी परजीवी स्वभाव को व्यक्त करते हैं, जैसे कुस्कुटा।

जीवों के बीच अन्तः क्रियाएँ तथा परिणाम		
अन्त क्रिया का प्रकार	जीव A पर प्रभाव	जीव B पर प्रभाव
A. धनात्मक अन्तः क्रियाएँ सहजीविता (Symbiosis)		
1. A व B के बीच सहोपकारिता	लाभ होता है	लाभ होता है
2. A व B के बीच सहभोजिता	लाभ होता है	कोई प्रभाव नहीं होता
3. A व B के बीच आदि सहयोग	लाभ होता है	लाभ होता है
B ऋणात्मक अन्तः क्रियाएँ सहजीविता (Symbiosis)		
1. A व B के बीच प्रतिस्पर्धा	लाभ होता है	हानि होता है
2. A व B के ऊपर परजीविता	लाभ होता है	हानि होता है
3. A व B के ऊपर परभक्षण	लाभ होता है	हानि होता है

4. परात्परजीव (Hyperparasite)

अन्य परजीवियों पर परजीविता का स्वभाव प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार की परजीविता को परात्पर जीविता कहते हैं। परजीवी जीवों पर जैविक नियंत्रण के लिए परात्परजीवियों का उपयोग किया जाता है। परात्परजीवी पोषण के लिए परजीवियों पर निर्भर होते हैं और उनकी मृत्यु का कारण बनते हैं।

वे जीव जो अपने जीवित शिकार पर पोषित होते हैं परभक्षक कहे जाते हैं। इस प्रकार की परजीविता को परभक्षण कहते हैं। इसके अंतर्गत शाकाहारी, वे जीव, जो पौधों या पौधों के अंगों को खाकर ऊर्जा प्राप्त करते हैं तथा मांसाहारी, वे जीव, जो शाकाहारियों के मांस से पोषित होते हैं, आते हैं।

5. एमेनसैलिज्म (Amensalism)

यह कुछ हद तक विरोध से संबंधित है, जहां वातावरण में एक जीव की वृद्धि को कुछ रासायनिक पदार्थों के स्राव से रोका जा सकता है। उदाहरण के रूप में गेन्दा मृदा में कुछ रासायनिक पदार्थों के स्राव से सूत्रकृतियों और कृतियों की वृद्धि को रोकता है।

जातियों में प्रतियोगिता का प्रभाव

प्रतियोगिता एक प्रकार की ऋणात्मक अन्तः क्रिया है, जो एक ही प्रकार के संसाधनों का उपयोग करने वाले दो या दो से अधिक जीवों के बीच होती है। वह प्रतियोगिता जो एक ही जाति के सदस्यों के बीच होती है उसे आंतरजातीय प्रतियोगिता और भिन्न जाति के सदस्यों के बीच होने वाली प्रतियोगिता को अंतरजातीय प्रतियोगिता कहते हैं। आंतरजातीय प्रतियोगिता अधिक गंभीर होती है, क्योंकि इसमें एक ही जाति के दो सदस्यों के बीच उपलब्ध संसाधनों के लिए एक जैसी ही रुचि होती है और इन संसाधनों की कमी दोनों सदस्यों को समान रूप से प्रभावित करती है।

पादप समुदाय

पादप समुदायों में दो सदस्यों के बीच प्रतियोगिता आवास, पोषण, जल और प्रकाश के लिए मुख्य रूप से उत्पन्न होती है। प्रतियोगिता सभी पादप समुदायों का सर्वव्यापी स्वभाव है। अनुक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में प्रतियोगिता का अभाव होता

है। परपोषी और परजीवी के बीच कोई प्रतियोगिता नहीं होती परन्तु जब दो परजीवी एक साथ ही किसी परपोषी को संक्रमित करते हैं तब उनके बीच परपोषी से पोषण लेने के लिए प्रतियोगिता उत्पन्न होती है। खेतों में फसल पौधों और खरपतवार के बीच प्रतियोगिता उत्पन्न होती है। खरपतवार अनावश्यक जंगली पौधे हैं जो खेतों में स्वयं उग आते हैं।

वन समुदायों में शाक, झाड़ी और वृक्ष एक-दूसरे के समीप उत्पन्न होते हैं। झाड़ी की वृद्धि शाक पर प्रभावी होती है। इसके बदले उन पर वृक्षों की वृद्धि प्रभावी होती है। यहां शाक, शाक के साथ झाड़ी, झाड़ी के साथ और वृक्ष के साथ प्रतियोगिता करते हैं। कुछ पौधे ऐलीलोपैथी द्वारा अपने आस-पास के वातावरण में कुछ रासायनिक पदार्थों का स्राव अपने सान्निध्य में रहने वाली जातियों की वृद्धि और उन्नति को रोकने के लिए करते हैं। इस प्रकार से ये अंतरजातीय प्रतियोगिता को रोकने का प्रयास करते हैं।

पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस

अपने आस-पास के वातावरण में कुछ फिनोलिक यौगिकों का स्राव करता है जिससे दूसरे बीजों के अंकुरण और वृद्धि को रोका जा सके। यह सबसे विनाशकारी खरपतवार है। इसके द्वारा स्रावित ऐजर्जिक रासायनिक पदार्थों से मनुष्य व जन्तुओं के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अनेक पौधों की जड़ों द्वारा रिसाव के रूप में जल में घुलनशील पदार्थों का स्राव किया जाता है जो दूसरी जातियों के नवोद्भिदों को उनके आस-पास के वातावरण में स्थापित होने से रोकता है। अंतरजातीय स्पर्धा का दूसरा उदाहरण एमेनसैलिज्म है जिसमें एक जाति को हानि होती है परन्तु दूसरी जाति को इस प्रकार की अन्तः क्रिया से न तो हानि होती है और न ही लाभ मिलता है। उदाहरण-क्लोरेला क्लैरिस (स्वच्छ जल में रहने वाला हरा शैवाल) क्लोरेलिन नामक प्रतिजैविक रसायन का स्राव करता है। यह स्राव बहुत से शैवाल और कवकों के लिए विष का कार्य करता है। स्फैगनम् का स्राव अन्य मॉस तथा लिवरवर्ट की वृद्धि और स्थापन को रोकता है। यह भी अपने आस-पास के वातावरण में कुछ रासायनिक पदार्थों का निरन्तर स्राव करता रहता है, जो मिट्टी में पाये जाने वाले मृतोपजीवी सूक्ष्मजीवी की वृद्धि को कम कर देता है, जिसमें उनके मृत कार्बनिक पदार्थ शीघ्र विघटित नहीं होते और पीट बनाने के लिए भूमि की सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

कृषि के मैदान में खरपतवार, जल, खनिज और खाद व सूर्य की ऊर्जा के लिए फसल के पौधों से स्पर्धा करते हैं। खरपतवार की अत्यधिक वृद्धि से फसलों का उत्पादन और वृद्धि दर बहुत घट जाती है। अंतराजातीय स्पर्धा के द्वारा खरपतवार कभी-कभी फसलों के उत्पादन को 40-50 प्रतिशत तक घटाते हुए देखे गये हैं। खेतों में फसल के पौधों की इन पौधों में स्पर्धा जमीन के नीचे से तब प्रारंभ होती है जब इनके जड़ तंत्र मिट्टी में समान स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं और स्पर्धा का प्रभाव पौधे के ऊपरी भाग में दिखाई पड़ने लगता है। इसके पश्चात् फसल की कायिक और जननिक वृद्धि विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

अंतराजातीय स्पर्धा

पौधे और जन्तु, दोनों की समुदायों के सदस्यों में इस प्रकार की प्रतियोगिता देखी जाती है, परन्तु जन्तुओं और पौधों के समुदायों की विभिन्न जातियों में प्रतियोगिता की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त होती, जैसे पौधों के समुदाय में विभिन्न जातियाँ वासस्थान, पोषण, जल और प्रकाश के लिए प्रतियोगिता करती हैं परन्तु जन्तुओं के समुदाय में इसका स्पष्ट उदाहरण परभक्षी-भक्ष्य के परस्पर संबंध में देखा जा सकता है। जहाँ विभिन्न परभक्षी जन्तु अपने भक्ष्य के लिए एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं।

अंतराजातीय स्पर्धा आवश्यक रूप से तीव्र होती है, क्योंकि एक ही जाति के सदस्यों को स्थान व आहार के लिए समान आवश्यकता होती है। ये अपने आस-पास के वातावरण में उपस्थित सभी संसाधनों के लिए सीधे स्पर्धा करते हैं। ऐसी स्पर्धा से बचने के लिए बहुत से पौधों ने अपने बीजों के प्रकीर्णन और वृद्धि करने वाले अंगों के लिए अनेक उपयों को अपनाया है। लवणोद्भिद पौधों में बीजों का अंकुरण कभी-कभी जरायुज ढंग से होता है जहाँ बीज फल के अंदर ही अंकुरित हो जाते हैं और नवोद्भिद जब तक दलदल में स्थापित नहीं हो जाते उन्हें मातृ-वृक्ष से पोषण प्राप्त होता रहता है। जरायुजता से जहाँ इन पौधों के नवोद्भिद बड़ी ही आसानी से दलदल में धंसकर अपने को शीघ्रता से स्थापित कर लेते हैं वहीं अनेकों नवोद्भिदों के साथ-साथ उगने से गंभीर आंतरजातीय स्पर्धा भी उत्पन्न हो जाती है परिणामतः अनेकों नवोद्भिद असमय ही मृत हो जाते

हैं। जन्तुओं में भी आंतरजातीय प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए कभी-कभी कुछ विशेष अनुकूलन देखने को मिलते हैं, जैसे कीटों में, तितलियों में या मेंढक के जीवन चक्र में दो अवस्थाएँ होती हैं, किशोरावस्था और वयस्कावस्था। इनकी किशोरावस्था में इनका व्यवहार, भोजन और भोजन ग्रहण करने की विधियाँ, वयस्कावस्था से सर्वथा भिन्न होती है जिसके फलस्वरूप इनकी किशोरावस्था और वयस्कावस्था के मध्य कोई स्पर्धा उत्पन्न नहीं हो पाती है, क्योंकि दोनों स्तरों की पारिस्थितिक कर्मस्थिति अलग-अलग होती है। कुछ जन्तुओं के पास एक निश्चित प्रदेश होता है तो उनके घरों को घेरे रहता है तथा उन्हें उनकी ही दूसरी जातियों के सदस्यों से बचाता है।

परभक्षी (शिकारी) व उनके भक्ष्य (शिकार) के बीच अन्तः क्रिया का परिणाम

परभक्षण दो जातियों के बीच एक ऐसी अस्थायी पारस्परिक प्रक्रिया है जिसमें एक जाति का जीव दूसरी जाति के जीव को मारकर अपने भोजन के लिए उपयोग में लाता है। वह जीव जो दूसरे जीव को अपना भोजन बनाता है परभक्षी कहलाता है। इसी प्रकार जो जीव भोजन बनाता है उसे भक्ष्य कहते हैं।

पारिस्थितिक दृष्टिकोण से शब्द 'परभक्षी' के व्यापक अर्थ हैं। परभक्षी वे जीव हैं जो प्रत्यक्ष रूप से जीवितों पर उन्हें मारकर अथवा बिना मारे हुए निर्भर होते हैं। इनमें पारिस्थितिक तंत्र के सभी शाकाहारी, मांसाहारी व सर्वहारी जीव सम्मिलित हैं, परन्तु इनमें अपघटनकर्ता व अपमार्जक सम्मिलित नहीं हैं जो मृत कार्बनिक पदार्थों से भोजन ग्रहण करते हैं। अतः परजीवियों को जो पोषद पर निर्भर होते हैं तथा रोगजनकों जो पोषद में रोग उत्पन्न करते हैं को भी परभक्षियों में सम्मिलित कर सकते हैं।

सामुदायिक रचना पर की-स्टोन प्रजातियों का प्रभाव

वह प्रजाति अथवा प्रजातियों का समूह जिसका समुदाय अथवा पारिस्थितिकी पर प्रभाव मात्र उनकी अत्यधिक संख्या के कारण ही नहीं बल्कि आशा से कहीं अधिक उनके कार्यों से अभिव्यक्त

होता है, उसे की-स्टोन प्रजाति कहा जाता है। यह एक उच्च कोटि का परभक्षी हो सकता है। कोई ऐसा पौधा जो दूसरे जीव-जन्तुओं को भोजन और आश्रय प्रदान करता हो या उसकी भूमिका वहां के समुदाय का पारिस्थितिकी में विशेष हो, की-स्टोन प्रजाति बन सकता है। यह एक प्रजाति का समूह भी हो सकता है। इसका प्रभाव केवल उसकी अधिकता से नहीं आंका जाता है वरन् समुदाय और पर्यावरण पर उसके प्रभाव और अहम भूमिका के आधार पर आंका जाता है। की-स्टोन प्रजातियां सूक्ष्म जलवायु मृदा की रचना तथा मृदा रसायन एवं खनिजों के स्तर को भी परिवर्तित और प्रभावित करने में सक्षम होती हैं। वह प्रभावी प्रजाति जो पर्यावरण में समुचित परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है को, की-स्टोन प्रजाति के रूप में पहचाना जाता है।

ये प्रजातियां पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह, खाद्य, श्रृंखला और खनिजों के चक्रण को भी प्रभावित करती हैं और अपनी परस्पर क्रियाओं से समुदाय की संरचना और जैविक घटकों को परिवर्तित कर सकती हैं। पौधे व जन्तु के अतिरिक्त कभी-कभी सूक्ष्म जीवी भी की-स्टोन प्रजातियों के रूप में काम करते हैं।

की-स्टोन प्रजाति का सूक्ष्म जलवायु पर प्रभाव

वृक्षों के किसी समुदाय में, उनकी वृहद् शाखाओं और पत्तियों के छत्र की एक प्रभावशाली भूमिका होती है। ये अपने आस-पास के भौतिक पर्यावरण को परिवर्तित करके अपनी एक सूक्ष्म जलवायु क्षेत्र बना लेते हैं जो उस क्षेत्र की विस्तृत क्षेत्र जलवायु से भिन्न होता है। किसी घने वृक्ष के नीचे और उसके आस-पास के खुल क्षेत्र के बीच तापमान आपेक्षिक आर्द्रता और प्रकाश तीव्रता के अंतर को स्पष्ट देखा जा सकता है। वृक्ष के नीचे दिन और रात के तापमान में बहुत ही कम अंतर देखा जा सकता है। वृक्षों के नीचे प्रकाश की तीव्रता और वायु की गति भी बहुत कम होती है। वृक्षों के नीचे तापमान से कम होने से मृदा से जल का वाष्पन भी धीमी गति से ही होता है और पूरे समय अत्यधिक आर्द्रता बनी रहती है। इस प्रकार से वृक्ष अपने नीचे के क्षेत्र में अपना सूक्ष्म जलवायु क्षेत्र बना लता है, जिससे इसके नीचे उगने वाले स्थान में सामुदायिक संरचना, खनिज

चक्रण और ऊर्जा प्रवाह इसके द्वारा पूरी तरह से प्रभावित हो। यह कार्य ही इसे एक की-स्टोन प्रजाति के रूप में स्थापित करता है।

की-स्टोन सूक्ष्मजीवियों का पर्यावरण पर प्रभाव

भौतिक पर्यावरण और सामुदायिक संरचना को प्रभावित कर कुछ सूक्ष्मजीवी की-स्टोन प्रजाति के रूप में कार्य करते हैं। सूक्ष्म आकार के होने पर भी इनके कार्य पर्यावरण को परिवर्तित करते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले अनेकों प्रोकैरियोट्स जैसे राइजोबियम, क्लॉस्ट्रिडियम, एंजेटोबैक्टर, नोस्टॉक, एनाबीना आलोसाइरा आदि मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए वायवीय नाइट्रोजन को कार्बनिक नाइट्रोजन में परिवर्तित करते हैं। कुछ मृतोपजीवियों द्वारा मृदा के कार्बनिक अवशेषों का अपघटन करने से ह्यूमस बनता है जो मृदा की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाता है और जैव भू-रसायन चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ वनों में वृक्षों की जड़ों के साथ अनेकों सूक्ष्मजीवी मूल-परिवेशी सूक्ष्म वनस्पतिजात बना लेते हैं जो मृदा से खनिजों के स्थानान्तरण और अवशोषण में सहायक होते हैं और वृक्षों की जड़ों के साथ आदि सहयोग प्रदर्शित करते हैं। ये सूक्ष्मजीवी जड़ों के निकट पाये जाने वाले अधुलनशील खनिजों को घुलनशील खनिजों में बदलते रहते हैं, जिससे जड़ें सुविधानुसार उन्हें अवशोषित करने में असफल रहती हैं और वृक्ष की वृद्धि प्रभावित होती है। इस प्रकार यहां सूक्ष्मजीवों का की-स्टोन प्रजाति कि रूप में महत्व उनकी अनुपस्थिति के रूप में सिद्ध हो रहा है जिसका वनों के पुनर्वनारोपण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

परभक्षी की-स्टोन प्रजातियों के रूप में

मूल रूप से बड़े परभक्षी जैसे चीता, तेंदुआ, भेड़िया आदि ही की-स्टोन प्रजाति समझे जाते थे। इनकी उपस्थिति समुदाय में शाकाहारी की वृद्धि और अधिकता को निरन्तर कम करती रहती है। इस प्रकार चरने वाले पशु या चारक का हरी वनस्पतियों पर दबाव भी कम हो जाता है। कुछ परभक्षी कुशल परागणकर्ता भी होते हैं और अगर इनकी अकाल-मृत्यु हो जाये तो पौधों का

प्रजनन कार्य बाधित होता है। अनेकों पौधे इससे असमय मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अतः परभक्षी-भक्ष्य अन्तः क्रिया सामुदायिक संरचना और संगठन को अनेकों रूप में प्रभावित करते हैं। इस प्रकार कुछ छोटे परभक्षी जीव भी की-स्टोन प्रजाति बन जाते हैं। सूक्ष्मजीवियों का मुख्य आकर्षण वृक्षों की जड़ों द्वारा स्रावित शर्करा, अमीनो अम्ल और सरल प्रोटीन से होता है जिन्हें ये भोजन के रूप में लेते हैं। इनके अपघटन से अम्लों का निर्माण होता है। अम्लीय PH मान पर अघुलनशील अकार्बनिक फॉस्फेट्स घुलनशील फॉस्फेट्स में परिवर्तित हो जाता है और जड़ों द्वारा आसानी से अवशोषित होता रहता है। अतः इन सूक्ष्मजीवियों के वृक्षों के स्थापन, वृद्धि एवं समुचित विकास में प्रभावी भूमिका होती है और ये वनों में जैव-विविधता को भी निश्चय करते हैं, जिससे इन्हें की-स्टोन प्रजाति की श्रेणी में रखना सर्वथा उचित है।

किसी वन में यदि आग लग जाये, सारे वृक्ष जल जायें, वृक्षों के ही साथ-साथ मृदा से सूक्ष्मजीवी समुदाय का भी समूह विनाश हो जाये तब ऐसे वनों के पुनर्वनारोपण के समय अनेकों वृक्षों के नवोद्भिद का अभाव है, जो अघुलनशील खनिज लवणों को घुलनशील बना कर जड़ों को उन्हें अवशोषित करने में सहायक होते हैं।

अफ्रीका के हाथी जो चारक हैं, अनेकों झाड़ियों वृक्षों की पत्तियों और कोमल तनों को खाते हैं। निरन्तर चारण से वनों और वनस्थलियों को ये भारी हानि पहुंचाते हैं। धीरे-धीरे वनों का घास के मैदानों में प्रतिस्थापन होने लगता है। इससे हाथियों को असुविधा अनुभव होती है और वे घास के मैदानों से पूरा-पूरा भोजन नहीं निकाल पाते। हाथियों ने पर्यावरण को परिवर्तित किया तो परिवर्तित पर्यावरण हाथियों की तुलना में छोटे चरने वाले जन्तुओं के लिए अधिक उपयुक्त हो गया। चूंकि हाथियों के पास पर्यावरण को परिवर्तित करने की क्षमता है और वे वनों को घास के मैदान में बदलने में सक्षम हैं अतः उन्हें की-स्टोन प्रजातियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

अनुक्रमण

समुदाय (Communities) कभी भी स्थिर नहीं होते हैं। इनमें निरन्तर समय और स्थान के साथ-साथ परिवर्तन होते रहते हैं।

यद्यपि ऐसे परिवर्तनों की गति अत्यधिक धीमी होती है, परन्तु एक लम्बे अन्तराल के बाद ही यह आसानी से दृष्टिगोचर हो पाती है।

अनुक्रमण सैकड़ों या हजारों वर्षों में वानस्पतिक समुदायों की रचना और आकार में आने वाली विभिन्नताओं को व्यक्त करता है। इस क्रिया में समुदाय और पर्यावरण में पारस्परिक क्रिया से जो परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, उसके फलस्वरूप क्रमशः एक समुदाय दूसरे के द्वारा प्रतिस्थापित (Replace) होते रहते हैं। यह एकल पथगामी पारिस्थितिक समय में होने वाला वानस्पतिक परिवर्तन है। अनुक्रमण की गति लम्बी अवधि के बाद मन्द पड़ने लगती है और अन्त में एक ऐसे समुदाय का आगमन होता है जो वहाँ के भौतिक पर्यावरण के साथ गतिज संतुलन (Dynamic Balance) स्थापित करके पर्यावरण को परिवर्तित होने से रोक लेता है। ऐसे संतुलित समुदाय को चरम समुदाय (Climax Community) कहते हैं। सर्वप्रथम स्थापित समुदाय को नवीन समुदाय कहते हैं। अतः अनुक्रमण नवीन समुदाय के प्रारम्भ होकर क्रम की समुदायों द्वारा आगे बढ़ते हुये चरम समुदाय पर समाप्त होता है।

ओडम (Odum) ने 1969 में पारिस्थितिक अनुक्रमण को निम्नलिखित ढंग से परिभाषित किया-

- अनुक्रमण वाली भूमि या स्थान पर समय के साथ-साथ वानस्पतिक समुदायों के क्रम में होने वाले परिवर्तन हैं।
- यह समुदायों के द्वारा भौतिक पर्यावरण में उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप परिलक्षित होता है, जो परिवर्तन के ढंग, दर और प्रभाव पर निर्भर करता है।
- अनुक्रमण चरम समुदाय के स्थापित होने तक निरन्तर चलता रहता है, जिसमें प्रति यूनिट उपलब्ध ऊर्जा प्रवाह, जीवभार और जीवों के बीच सहयोगी कार्य की भूमिका होती है।

अनुक्रमण की प्रक्रिया

क्लिमेन्ट्स (Clements) ने 1916 में अनुक्रमण में निम्नलिखित प्रक्रियाओं का उल्लेख किया-

- **न्यूडेशन (Nudation):-** नवीन समुदाय के आगमन के लिये खाली स्थान प्रदान करने की प्रक्रिया न्यूडेशन कहलाती है।

- **आक्रमण (Invasion):-** बाहर से अनेक नई जातियों का अनुक्रमण के क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश आक्रमण कहलाता है।
- **प्रतिक्रिया (Reaction):-** पादप समुदाय और पर्यावरण एक-दूसरे से पदार्थों के आदान-प्रदान के समय प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। पर्यावरण में निरन्तर होने वाला परिवर्तन इसी का प्रतिफल है।
- **चरम अवस्था (Climax Stage):-** अनुक्रमण की क्रिया में सबसे अन्त में चरम अवस्था प्राप्त होती है, जिसकी व्याख्या निम्न तरीके से की गयी है- निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि चरम अवस्था में समुदाय और पर्यावरण के बीच बहुत ही उचित आपसी सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप दोनों संतुलन को प्राप्त होते हैं। यह अवस्था पारिस्थितिक संतुलन के लिये आवश्यक है।

क्लिमेन्ट्स ने चरम अवस्था की स्थापना में जलवायु के विशेष योगदान को ही एक मात्र कारण माना है। अतः क्लिमेन्ट्स के सिद्धान्त को **क्लाइमेटिक क्लाइमेक्स** कहा जाता है, और इसे एक **चरम सीमा सिद्धान्त** भी कहते हैं, अन्य पारिस्थितिक वैज्ञानिकों के मत से चरम अवस्था के स्थापन में जलवायु के साथ ही साथ मृदा और जैविक अपघटक भी समान रूप से भाग लेते हैं। अतः इसे बहुचरम सीमा सिद्धान्त कहा जाता है।

समुदाय के बीच ऊर्जा का प्रवाह

पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) में ऊर्जा तीन रूपों में उपलब्ध होती है। पहले- सूर्य की विकिरण ऊर्जा (Radiant Energy) के रूप में, दूसरे- जैविक समुदायों (समस्त जीव-जन्तुओं में) के जीवद्रव्य (Protoplasm) के विभिन्न सरल या जटिल कार्बनिक अणुओं में रासायनिक बंध ऊर्जा (Chemical Bond Energy) के रूप में और तीसरे- कोशिकीय श्वसन या मृत कार्बनिक पदार्थों के अपघटन द्वारा मुक्त हुई ऊष्मीय ऊर्जा (Heat Energy) के रूप में।

पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों में ऊर्जा का प्रवेश प्रकाश-स्वपोषी (Photoautotrophs) पादपों के माध्यम से सूर्य की विकिरण ऊर्जा के रूप में हरी पत्तियों में उपस्थित पर्णहरिम अणुओं (Chlorophyll molecules) द्वारा अवशोषण से होता

है। प्रकाश-संश्लेषण क्रिया द्वारा पौधे विकिरण ऊर्जा को रसायनिक बंध ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं, जो इस प्रक्रिया में उत्पादित ग्लूकोस के अणुओं में संग्रहित हो जाती है। ग्लूकोस की रासायनिक बंध ऊर्जा पौधों के जीवद्रव्य (Protoplasm) में विभिन्न उपापचयी क्रियाओं द्वारा अनेकों प्रकार के सरल एवं जटिल संरचनाओं वाले कार्बनिक अणुओं जैसे प्रोटीन-वसा, न्यूक्लीक अम्ल तथा विभिन्न प्रकार की शर्करा इत्यादि में संग्रहित होती रहती है, जिससे स्वपोषियों के जीवभार (Biomass) में वृद्धि होती है।

समस्त जीव-जन्तुओं में उनके अनेकों उपापचयी कार्यों के लिये निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो उन्हें श्वसन क्रिया द्वारा एटीपी (ATP) के रूप में प्राप्त होती है। श्वसन क्रिया में जब ग्लूकोज या कोई अन्य कार्बनिक पदार्थ ऑक्सीकृत होता है, तो उसमें संग्रहित रासायनिक बंध ऊर्जा के कुछ भाग से एटीपी (ATP) बनाता है, और शेष भाग ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में श्वसन के विभिन्न चरणों से मुक्त होकर भौतिक पर्यावरण में चला जाता है। ग्लूकोज के अणुओं में स्थित ऊर्जा का मात्र 40 प्रतिशत ही एटीपी (ATP) में संग्रहित हो पाता है, शेष 60 प्रतिशत ऊर्जा श्वसन की ऊष्मा के रूप में मुक्त हो जाती है।

श्वसन क्रिया के उपरान्त शेष रासायनिक बंध ऊर्जा जीव-जन्तुओं के जीवभार में संग्रहित रहती है, जो उनकी मृत्यु के उपरान्त ही अपघटित हो पाती है। जिस जीवभार का उपयोग जैविक घटकों द्वारा नहीं हो पाता वह उनकी मृत्यु के बाद मृतोपजीवी सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटित होता है, और उसमें स्थित समस्त रासायनिक बंध ऊर्जा धीरे-धीरे ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में मुक्त होती रहती है, और भौतिक पर्यावरण में मिल जाती है। अतः जैविक घटकों के जीवभार में संग्रहित समस्त रासायनिक बंध ऊर्जा श्वसन और मृत अवशेषों के अपघटन द्वारा ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में मुक्त होकर भौतिक पर्यावरण में समा जाती है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह सदैव ऊष्मागतिकी (Thermodynamics) के नियमों का पालन करता है, अर्थात् ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और नहीं नष्ट की जा सकती है, यद्यपि ऊर्जा के एक रूप एक-दूसरे रूप में परिवर्तन सम्भव है (ऊष्मागतिकी का प्रथम नियम)। ऊर्जा के एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन के समय कुछ ऊर्जा वातावरण में ताप (Heat) के रूप में विसरित होती है (ऊष्मागतिकी का द्वितीय नियम)।

विकिरण ऊर्जा (Radiant Energy) प्रकाश संश्लेषी वर्णकों (पर्णहरिम, कैराटीन और जैन्थोफिल) द्वारा पौधों के हरे भागों में प्रकाश अभिक्रिया (Light Reaction) के लिये संग्रहित की जाती है, जो स्वांगीकरण शक्ति (Assimilatory Power) के रूप में एटीपी (ATP) और $NADPH_2$ बनाते हैं। ATP व $NADPH_2$ का अप्रकाशिक अभिक्रिया (Dark Reaction) में हेक्सोस शर्करा के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। हेक्सोस शर्करा का विभिन्न उपापचयी क्रियाओं में प्रयोग होता है, जिनके उपरान्त जीवद्रव्य में पॉलिसैकेराइड्स, पॉलिन्यूक्लिओटाइड्स तथा विटामिन (Vitamins) इत्यादि का निर्माण होता है। इसके फलस्वरूप शुष्क भार (Dry Weight) में वृद्धि होती है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में शुष्क भार में वृद्धि को भी सकल प्राथमिक उत्पादकता (Gross Primary Productivity - GPP) कहते हैं। अतः विकिरण ऊर्जा की वह मात्रा जो प्राथमिक उत्पादकों (Primary Producers) के हरित ऊतकों में प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा संग्रहित की जाती है, वह हमेशा ही उसके सकल प्राथमिक उत्पाद (Gross Primary Product) के बराबर होता है। चूंकि सभी जीवित ऊतक ऊर्जा की प्राप्ति कोशिकीय-श्वसन (Cellular Respiration) क्रिया द्वारा ही करते हैं। अतः सकल प्राथमिक उत्पाद (Gross Primary Product) के कुछ अंश का उपयोग कोशिकीय श्वसन में किया जाता है, और शेष सकल प्राथमिक उत्पाद की मात्रा जो कोशिकीय-श्वसन में उपयोग किये जाने के बाद शेष बची रह जाती है, उसे नेट प्राथमिक उत्पादकता (Net Primary Productivity = NPP) कहते हैं।

- (i) विकिरण ऊर्जा की मात्रा जो प्रकाश-स्वपोषी द्वारा संग्रहित की गयी है = सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP)।
- (ii) सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) = नेट प्राथमिक उत्पादकता (NPP) + श्वसन क्रिया में व्यय ऊर्जा।
- (iii) नेट प्राथमिक उत्पादकता (NPP) = सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) - कोशिकीय श्वसन में व्यय ऊर्जा।

सूर्य की विकिरण ऊर्जा की मात्रा जो पृथ्वी की सतह पर पहुंचती है वह लगभग 5 किलो कैलोरी प्रति वर्ग सेन्टीमीटर प्रति मीटर होती है जिसे, सौर फ्लक्स (Solar Flux) भी कहते हैं। सौर विकिरण का लगभग दो तिहाई भाग (अर्थात् 75-80

प्रतिशत भाग) पृथ्वी से परावर्तन द्वारा, बादलों द्वारा अवशोषण से, धूल के कणों द्वारा फैलने या बिखरने से, वातावरण में उपस्थित गैसों द्वारा अवशोषण से या वाष्पोत्सर्जन द्वारा नष्ट हो जाता है। हरे पौधे कुल विकिरण ऊर्जा मात्र 1 प्रतिशत भाग ही अपने सकल का प्राथमिक उत्पाद (GPP) में परिवर्तित कर पाते हैं। चूंकि पृथ्वी का लगभग 2/3 भाग जल के अन्दर है, जो जलमण्डल (Hydrosphere) का निर्माण करता है। अतः अधिकतम ऊर्जा-रूपान्तरण जलीय पौधों (Adequatic Plants) द्वारा सम्पन्न होता है। डायटम्स (Diatoms) और डाइनोफ्लैजिलेट्स अधिकतम कार्यश्रमी (Efficient) ऊर्जा परिवर्तक हैं।

विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में प्राथमिक उत्पादकता की दर भिन्न-भिन्न होती है, इसका प्रमुख कारण है वहाँ के तापमान में भिन्नता या पृथ्वी के विभिन्न भू-भागों में आर्द्रता की भिन्न मात्रा। बहुत से पारिस्थितिक तंत्रों में वार्षिक सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) की मात्रा मृदा में उपस्थित जल और खनिज लवणों की उपस्थिति द्वारा भी मापी जाती है। शुष्क प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र (Desert Ecosystem) में GPP की दर सदैव निम्नतम होती है, जबकि आर्द्र प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र में अधिकतम होती है, जैसा कि हम भूमध्यरेखीय वनों (Equatorial Rain Forests) में पाते हैं। जलीय तंत्र में कोरल रीफ पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता सबसे अधिक आंकी गयी है, जबकि इनका क्षेत्रफल पृथ्वी पर मात्र 0.3% ही है।

पौधे अवशोषित ऊर्जा का अधिकतम भाग स्वयं अपनी वृद्धि एवं गुणन में प्रयोग करते हैं। वे अपने सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) का केवल 10% भाग ही खाद्य-श्रृंखला के द्वारा शाकाहारी जीव-जन्तुओं को प्रदान करते हैं, और लगभग 10% भाग अपने कोशिकीय श्वसन में भी खर्च करते हैं। शेष GPP को अपने जीवभार (Biomass) में संग्रहित करते रहते हैं। जिससे इनके शुष्क भार में निरन्तर वृद्धि होती है। जीवभार में संग्रहित ऊर्जा जीवन पर्यन्त उसी रूप में पड़ी रहती है और मृत्यु के बाद अपघटन द्वारा सभी रासायनिक-बंध ऊर्जा (Chemical Bond Energy) धीरे-धीरे ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में मुक्त होकर भौतिक वातावरण में मिल जाती है। मृतोपजीवी सूक्ष्मजीव (Saprophytic Microorganisms) अपघटन के कार्य को सम्पन्न करके ऊर्जा के प्रवाह और खनिजों के चक्रण में सहायक होते हैं, जिनके फलस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन स्थापित होता है।

पारिस्थितिकीय उत्पादकता

किसी क्षेत्र में स्वपोषित प्राथमिक उत्पादक हरे पौधों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र में प्रति इकाई समय में सकल संचित ऊर्जा की मात्रा को पारिस्थितिकीय उत्पादकता (Ecological Productivity) कहा जाता है। वास्तव में पारिस्थितिक उत्पादकता का तात्पर्य पारिस्थितिक तंत्र में सौर्यिक ऊर्जा के प्रयोग द्वारा प्रकाश संश्लेषण की विधि से स्वपोषित प्राथमिक उत्पादक द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र (प्रायः प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में) में प्रति समय इकाई में (प्रतिदिन या प्रतिवर्ष) जैविक पदार्थों या ऊर्जा की वृद्धिदर से होता है।

स्वपोषित प्राथमिक उत्पादक जीवों द्वारा जैविक पदार्थों या ऊर्जा के उत्पादन को प्राथमिक उत्पादन (Primary Production) कहते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता अधोलिखित दो कारकों पर निर्भर करती है-

- हरे पौधों को प्राप्त होने वाली सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा तथा
- सौर्यिक ऊर्जा को आहार ऊर्जा में रूपान्तरित करने की हरे पौधों की क्षमता।

प्राथमिक उत्पादन का मापन दो रूपों GPP (Gross Primary Production) तथा NPP (Net Primary Production) में किया जाता है।

$NPP = GPP - \text{श्वसन द्वारा प्राथमिक उत्पादकों द्वारा नष्ट ऊर्जा की मात्रा।}$

प्राथमिक उत्पादकता में समानता नहीं पायी जाती है। भूमध्य रेखीय क्षेत्र में उत्पादकता अधिक तथा ध्रुवों की ओर निरन्तर कम होती जाती है। इसका प्रमुख कारण सौर्यिक ऊर्जा की प्राप्ति है क्योंकि प्राथमिक उत्पादकता सौर्यिक ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर करती है। भूमण्डलीय पारिस्थितिक तंत्र की प्राथमिक उत्पादकता में स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्वस्तरीय भिन्नता पायी जाती है। भिन्नता के आधार ओडम (1959) ने विश्व को अधोलिखित तीन उत्पादकता स्तरों में विभाजित किया है-

- उच्च पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश:** उष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्र, जलोढ़ मैदान, ज्वारनमुख क्षेत्र, गहन कृषि क्षेत्र आदि।

- मध्यम पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश:** घास क्षेत्र, झीलें आदि।

- निम्न पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश:** गम्भीर सागरीय क्षेत्र, मरुस्थलीय प्रदेश, आर्कटिक क्षेत्र आदि।

पारिस्थितिकीय उत्पादकता	
पारिस्थितिकी तंत्र	औसत नेट प्राथमिक उत्पादकता (शुल्क ग्राम/मी ² /वर्ष)
■ उष्ण कटिबंधीय वन	2000
■ शीतोष्ण कटिबंधीय वन	13000
■ उष्ण सवाना क्षेत्र	700
■ कृषि क्षेत्र	650
■ घास क्षेत्र	600
■ दुण्डू क्षेत्र तथा अल्पाइन	140
■ खुलसागर	125
■ रेगिस्तान क्षेत्र	03.70
■ समस्त सागरीय क्षेत्र	155
■ ज्वारनद मुख	2000
समस्त पृथ्वी (औसत)	320

पौधों के जीवभार कभी-कभी शाकाहारियों में समान जीवभार नहीं बना पाते हैं। शाकाहारियों में उनका द्वारा खायी गयी भोजन की मात्रा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि उस भोजन के कार्बनिक पदार्थों की स्वांगीकृत हुई मात्रा। उनके भोजन की 10% मात्रा ही सही रूप में स्वांगीकृत होकर उनके शरीर में मांस के रूप में संचित होती है शेष अपचित पदार्थ मल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसे 10% नियम (10% Rule) भी कहते हैं। कुछ स्थानों पर उच्च पोषण से ऊर्जा का स्थानान्तरण 20 से 25% तक बढ़ जाता है।

जीवों को उनके ऊर्जा स्रोत और कच्चे माल (Raw Materials) के आधार पर पांच विभिन्न ऊर्जा स्तरों में विभक्त किया जाता है, जिन्हें पोषक स्तर (Trophic Level) या ऊर्जा स्तर (Energy Level) कहते हैं। प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) जो अकार्बनिक पदार्थों, जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, जल और खनिज लवणों का प्रयोग करते हैं प्रकाश-स्वपोषी या

प्रकाश-कार्बनिक पोषी (Photolith-otrophs) कहे जाते हैं, इन्हें प्रथम ऊर्जा स्तर (Trophic Level - 1) में वर्गीकृत करते हैं। रसायन-स्वपोषी जीवाणुओं को भी इसी वर्ग में रखते हैं, पूरे प्राथमिक उत्पाद की तुलना में इनका योगदान 0.001% से भी कम ही होता है। शाकाहारी जीव-जन्तु (Herbivores) जो पौधों को सीधे अपना भोजन बनाते हैं, उन्हें द्वितीय ऊर्जा स्तर (Trophic Level- 2) में रखते हैं। इन्हें केवल 10% ऊर्जा ही प्राथमिक उत्पादकों से प्राप्त हो पाती है। शाकाहारियों द्वारा उत्पादित कार्बनिक पदार्थों का उपयोग मांसाहारी जीवों (Carnivores) द्वारा किया जाता है, जिन्हें तृतीय ऊर्जा स्तर (Trophic Level - 3) में वर्गीकृत करते हैं। चौथा ऊर्जा स्तर (Trophic Level - 4) उन उच्च वर्गीय शीर्ष उपभोक्ताओं का है, जो शाकाहारियों और मांसाहारियों दोनों का अपने भोजन के लिये शिकार करते हैं, जैसे शेर या चीता वन पारिस्थितिक तंत्र में या व्हेल तथा शार्क समुद्रीय पारिस्थितिक तंत्र में।

मृत कार्बनिक अवशेषों पर उगने वाले मृतोपजीवों तथा सूक्ष्मजीवी ऊर्जा स्तर के पांचवें स्थान (Trophic Level - 5) को बनाते हैं, जो ऊर्जा स्तर 1, 2, 3 तथा 4 के समस्त जीव-जन्तुओं के मृत शरीर के अपघटनकर्ता (Decomposer) कहे जाते हैं। इस वर्ग में मुख्य रूप से मृतोपजीवी कवक, जीवाणु और एक्टिनोमाइसीट्स (Fungi, Bacteria and Actinomycetes) आते हैं।

अपघटनकर्ता (Decomposers) को अपचायक (Reducers) भी कहा जाता है, क्योंकि ये जटिल कार्बनिक पदार्थों को अपघटन के द्वारा सरल कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थों में बदलते हैं जिससे अनेकों खनिज तत्वों का पुनर्चक्रण (Recycling) हो सके।

प्राथमिक उत्पादकों द्वारा, विकिरण ऊर्जा का प्रकाश-संश्लेषण द्वारा रासायनिक बंध ऊर्जा में परिवर्तन, प्राथमिक उत्पादन (Primary production) कहलाता है, जबकि ऊर्जा स्तर (Trophic Level) 2, 3, and 4 के जीव-जन्तुओं द्वारा शुष्क भार में वृद्धि द्वितीयक उत्पादन (Secondary Production) कहलाता है। एक ऊर्जा स्तर पर संग्रहित ऊर्जा का केवल छोटा-सा भाग ही उसके आगे के ऊर्जा स्तर (Trophic Level)

को प्राप्त हो पाता है। (प्रायः 10% मात्र)। विभिन्न ऊर्जा स्तरों से होकर ऊर्जा प्रवाह में कितनी ऊर्जा एक स्तर से दूसरे स्तर को उपलब्ध होती है, इसे पारिस्थितिक कुशलता (Ecological Efficiency) कहते हैं। जो ऊर्जा प्रवाहित नहीं हो पाता और विभिन्न पादप एवं जन्तुओं के जीवभार (Biomass) में संग्रहित पड़ी रहती है, वह केवल इनकी मृत्यु के पश्चात ही अपघटित होकर ऊष्मीय ऊर्जा के रूप में मृत कार्बनिक पदार्थों से मुक्त होती है। ऊष्मीय ऊर्जा श्वसन क्रियाओं द्वारा भी मुक्त होती है, जो विभिन्न ऊर्जा स्तर के प्राणियों द्वारा निरन्तर भौतिक पर्यावरण को वापस होती रहती है। ऊर्जा के स्थानान्तरण की प्रक्रिया ऊष्मागतिकी के द्वितीय नियम (Second law of thermodynamics) पर आधारित होती है।

पारिस्थितिकीय तंत्र में पोषक पदार्थों की गति

महत्वपूर्ण लघु व दीर्घ पोषक तत्वों के जैविक से अजैविक व अजैविक से जैविक घटकों में गति के फलस्वरूप ही पारिस्थितिक तंत्र में पोषक तत्वों का प्रवाह निर्धारित होता है। इसे सामान्यतः “जैव-भू-रसायन चक्रीकरण अथवा पोषक तत्वों का चक्रण” कहते हैं। जो मुख्यतः विभिन्न जैविक स्तरों पर इनके परिग्रहण, संग्रह व विमुक्ति को दर्शाता है।

सजीवों की सामान्य वृद्धि व विकास के लिये विभिन्न उपापचयी क्रियाओं में लगभग 30-40 तत्व आवश्यक होते हैं। C, N, O, H, S and P छः मुख्य मूल जैविक तत्व हैं, जिनका उपयोग सभी मोनोसैकेराइड, पॉलिसैकेराइड, पॉलिपेप्टाइड व पॉलिन्यूक्लिओटाइड के निर्माण में होता है। ये भौतिक ही पौधों व जन्तुओं के कोशा-जीवद्रव्य के मुख्य निर्माणकारी घटक हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्वों जैसे- K, Ca, Fe, व Mg को भी मुख्य तत्व माना जाता है। ये तत्व पारिस्थितिक तंत्र के “जैव भू-रसायन चक्र” अथवा “खनिज चक्र” में जैविक घटकों से भौतिक वातावरण के बीच चक्रीय दिशा में गति करते हैं।

विभिन्न तत्व प्राथमिक रूप से पौधों (प्राथमिक उत्पादक- Primary Producers) द्वारा मृदा से ग्रहण किये जाते हैं, जो इन्हें “जीवभार” के विभिन्न कार्बनिक अणुओं में संग्रहित कर

लेते हैं। शाकाहारी इन तत्वों को अपनी भोजन कड़ी की सहायता से सीधे पौधों के जीवभार से ग्रहण करते हैं। माँसाहारियों को ये तत्व शाकाहारियों के माँस से प्राप्त होते हैं। विभिन्न ऊर्जा स्तरों के जीवों की मृत्यु के पश्चात इनके मृत शरीरों में स्थित अनुपयोगी खनिज तत्व, अपघटनकर्त्ताओं द्वारा पुनः चक्रीकरण (Recycling) हेतु भौतिक वातावरण में मुक्त कर दिये जाते हैं,

जहाँ से इन्हें पौधे पुनः प्राप्त कर सकें। इस प्रकार से खनिज पोषक तत्वों के चक्रीकरण में जैविक व भौतिक वातावरण विभिन्न रासायनिक अभिक्रियाओं तथा रूपान्तरणों के माध्यम से समान रूप से सम्मिलित होते हैं, इस कारण इस प्रक्रिया को जैव-भू-रासायन चक्र (Bio-Geochemical Cycle) कहा जाता है।



जीवमंडल (BIOSPHERE)



जैव जीव विभिन्न प्रकार के आवास स्थानों में मिलते हैं, जैसे-भूतल अथवा समुद्र के जल में, बर्फ से ढके क्षेत्रों में, वायु तथा मृदा में। आप जैव जगत के संगठन से परिचित हैं। इस संगठन के पदानुक्रम को जैव वर्णक्रम की तरह माना जा सकता है, जो विभिन्न स्तरों से मिलकर बना है। इस स्तरों का प्रसार आण्वीय-कोशिकीय से लेकर पारिस्थितिकी तंत्र तथा जीव मण्डल तक हो सकता है। विभिन्न स्तर एक-दूसरे को प्रभावित करने के अतिरिक्त ये एक-दूसरे पर निर्भर भी रहते हैं, इसलिए किसी स्तर पर अलग से विचार कर पाना कठिन है।

निम्न स्तर के संगठन के उदाहरण के रूप में आप कोशिका की संरचना एवं कार्य-प्रणाली का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में हम जीव मण्डल का अध्ययन करेंगे, जिसमें जैव जगत के संगठन के पदानुक्रम के उच्च स्तर सम्मिलित हैं। जीव मण्डल की अपनी संरचना होती है, जो जैव एवं अजैव घटकों से मिलकर बनी है। प्रत्येक घटक एक विशिष्ट कार्य सम्पन्न करता है। समस्त कार्यों का कुल योग जीव मण्डल को प्रकार्यात्मक स्थिरता प्रदान करता है। सम्भवतः यही कारण है कि जीव मण्डल को सबसे बड़ा जैव तंत्र माना जाता है।

जीव मण्डल संरचना तथा कार्य

आप जनसंख्या, जैव समाज एवं पारिस्थितिकी तंत्र जैसे शब्दों से परिचित हैं। किसी भी प्रजाति के एक स्थान पर पाए जाने वाले जीवों की कुल संख्या को जनसंख्या कहते हैं। किसी क्षेत्र

के अन्तर्गत इन जीवों की कुल जनसंख्या कहते हैं। किसी क्षेत्र के अन्तर्गत इन जीवों की कुल जनसंख्या सम्मिलित रूप में जैव समाज का निर्माण करती है। ये जैव समाज लगातार एक-दूसरे से तथा अपने भौतिक वातावरण से पारस्परिक क्रिया करते रहते हैं।

उदाहरण के लिए, अपने घर में आप अपने परिवार के सदस्यों के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। आप पड़ोसियों के साथ भी पारस्परिक क्रिया करते हैं। पाठशाला में आप सहपाठियों, मित्रों एवं अध्यापकों के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। इसी प्रकार आपका अपने आस-पास के जन्तुओं एवं पेड़ पौधों के साथ कुछ सम्बन्ध होता है। आप अपने भौतिक वातावरण के साथ भी पारस्परिक क्रिया करते हैं, जिनका जैव एवं अजैव घटकों के मध्य लगातार विनिमय (आदान-प्रदान) होता रहता है। यह प्रकार्यात्मक तंत्र, पारिस्थितिकी तंत्र कहलाता है। उदाहरण के लिए, कोई तालाब, झील, जंगल (प्राकृतिक), खेत तथा मानव निर्मित जल-जीवशाला विभिन्न जलीय एवं स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों को निरूपित करते हैं।

किसी भौगोलिक क्षेत्र में समस्त पारिस्थितिकी तंत्र एक साथ मिलकर एक और भी बड़ी इकाई का निर्माण करते हैं, जिसका जीवोम अथवा बायोम कहते हैं। उदाहरण के लिए मरुस्थली बायोम या वन बायोम में कोई तालाब, झील, घास का मैदान या वन भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं। संसार के समस्त बायोमों को एक साथ मिलाकर एक और भी बड़ी इकाई का निर्माण होता है, जो एक विशाल स्वयंपोषी जैव तंत्र है और इसे जीवमण्डल कहते हैं। जीव जंतु समुद्रतल से 7-8 किमी की ऊंचाई तक वायु में तथा 5 किमी तक की गहराई पर समुद्र के

नीचे पाए जाते हैं। पृथ्वी का पोषण करने वाले ये क्षेत्र जीव मण्डल का निर्माण करते हैं।

जैसाकि आप जानते हैं पृथ्वी पर स्थल, जल तथा वायु जैव जीवों का पोषण करते हैं। पृथ्वी का जो भाग जल से बना है, वह जल मण्डल बनाता है। पृथ्वी के स्थलीय सतह पर तथा सागर जल के अन्दर भी मृदा एवं चट्टानें हैं। इस भाग को स्थल मण्डल कहते हैं। पृथ्वी सतह से ऊपर वायु पृथ्वी का गैसीय घटक है जिससे वायुमण्डल बनता है। जब हम इन तीनों मण्डलों (वायु-जल-स्थल) के साथ-साथ समस्त जैव जीवों को सम्मिलित रूप में एक बड़ी इकाई के रूप में लेते हैं, तो इसे जीव-मण्डल के रूप में जाना जाता है, जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

जीव मण्डल को जैव तंत्र के रूप में जाना जाता है। हम इसे तंत्र क्यों कहते हैं? शब्द कोष के अनुसार तंत्र शब्द का अर्थ है एक ऐसी इकाई जिसके विभिन्न घटक अथवा भाग सम्मिलित रूप में कुछ निवेश प्राप्त करते हैं, पारस्परिक क्रिया (प्रकार्य) करते हैं तथा उत्पाद प्रदान करने की कोई प्रविधि दर्शाते हैं, जिसके फलस्वरूप उस इकाई को कुल मिलाकर प्रकार्यात्मक स्थिरता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए घड़ी में चाबी भरना निवेश है, जिसका परिणाम होता है घड़ी के विभिन्न भागों में पारस्परिक क्रिया। घड़ी द्वारा समय दर्शाना इन समस्त पारस्परिक क्रियाओं का निर्गत या परिणाम है। कोई ऐसा तंत्र, जिसमें जैव तथा अजैव घटक उपरोक्त ढंग से पारस्परिक क्रिया करते हैं, किसी पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं या बड़े स्तर पर जीव मण्डल का निर्माण करते हैं। आइए हम जीव मण्डल का अध्ययन किसी बड़े जैव तंत्र के उदाहरण के रूप में करें। याद रहे कि जनसंख्या, समाज (जैव), भौतिक पर्यावरण (अजैव) सभी पारिस्थितिकी तंत्र के घटक हैं। ये घटक पारिस्थितिकी तंत्र को संरचना प्रदान करते हैं तथा एक दूसरे पर उनकी निर्भरता के परिमाणस्वरूप ही इसके विभिन्न प्रकार्य सम्पन्न होते हैं। सम्मिलित रूप में यही प्रकार्य किसी पारिस्थितिकी तंत्र को एक स्वतंत्र प्रकार्यात्मक इकाई का स्तर प्रदान करते हैं। हम किसी पारिस्थितिकी तंत्र, जैसे कोई तालाब, वन, घास के मैदान इत्यादि की संरचना एवं प्रकार्यों का अध्ययन कर सकते हैं। यदि इस प्रकार प्राप्त समस्त जानकारी पर हम एक साथ विचार करें तो आप पाएंगे कि बड़ी इकाई, अर्थात् जीव मण्डल की संरचना तथा उसके अनेक प्रकार्य बहुत कुछ पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना तथा प्रकार्यों से मिलते-जुलते हैं।

जीव मण्डल के अजैव घटक बहुत से पदार्थों से बने हैं—जैसे, वायु, जल, मृदा तथा खनिज। प्रकाश, ताप, नमी तथा वायु दाब जैसे घटक जलवायु का निर्धारण करते हैं। किसी क्षेत्र की जलवायु, मृदा की प्रकृति तथा जल उपलब्धता से यह निश्चित होता है कि उस क्षेत्र में किस प्रकार के जीव पाए जाएंगे। वास्तव में, जैव तथा अजैव, दोनों ही घटक परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। आप स्थलीय एवं जलीय आवासों में इन प्रभावों के बारे में अध्ययन कर चुके हैं।

जीव मण्डल में जैव-जीव पौधे एवं जन्तु हैं। तत्पश्चात्, इन जीवों को इनकी पोषण पद्धति के आधार पर उत्पादक, उपभोक्त तथा अपघटक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। आइए हम इन शब्दों पर विस्तारपूर्वक विचार करें। जैसा कि शब्दों से स्पष्ट है। उत्पादक के जीव होते हैं जो खाद्य पदार्थ का उत्पादन करते हैं। हम प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया के बारे में पढ़ चुके हैं। क्या आप इस वर्ग के अन्तर्गत समस्त पौधों को रख सकते हैं? यदि नहीं, तो क्यों? “उपभोक्ता” शब्द उन जीवों के लिए प्रयुक्त होता है जो खाद्य पदार्थ का उपभोग करते हैं। ये जीव, अन्य जीवों अथवा उनके किसी अंग अथवा अंगों का अपने भोजन के रूप में उपभोग करते हैं। आप बड़ी सरलता से समस्त जंतुओं को इस वर्ग में रख सकते हैं। गाय या भैंस क्या खाती हैं? वे अन्य जीव, जैसे घास को क्यों खाती हैं? जीवों का एक तीसरा वर्ग भी है जिसे अपघटक कहते हैं। ये सूक्ष्म जीव हैं जिनके अन्तर्गत जीवाणु तथा कवक या फंगस आते हैं। ये मृत पौधों एवं जन्तु शरीरों के अपघटन में सहायता करते हैं। क्या आप इन अपघटकों के महत्व का अनुमान लगा सकते हैं, कल्पना कीजिये कि अपघटक न होते तो मृत जीवों के शरीरों का क्या होगा? मृदा फसलों को पोषण कैसे कर सकेगी? हम इसके बारे में चर्चा बाद में करेंगे।

पोषण पद्धति के आधार पर जीवों को स्वयंपोषी एवं परपोषी के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। आपको ज्ञात है कि पहले वर्ग के जीव अपना भोजन स्वयं बनाते हैं जबकि दूसरे वर्ग के जीव भोजन हेतु दूसरों पर निर्भर करते हैं। आप अध्ययन कर चुके हैं कि किस प्रकार जन्तु अपने भोजन के लिये पौधों एवं अन्य जन्तुओं का उपभोग करते हैं। मानव भी परपोषी

है। हम भी अपना भोजन पकाकर स्वयं बनाते हैं, किन्तु यह प्रक्रिया पौधों से बहुत भिन्न है। वास्तव में हम सब्जियों एवं फलों का खाद्य पदार्थ के रूप में उपभोग करते हैं जो पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा बनाये जाते हैं। हम जन्तु उत्पाद भी लेते हैं, जैसे-दूध, अण्डा तथा मांस। यह भी हमें पौधों से ही प्राप्त होते हैं क्योंकि जन्तु पौधे खाते हैं।

पारितंत्र की संरचना

एक पारितंत्र के दो मुख्य घटक हैं-अजैव और जैव घटक।

अजैव घटक

अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थ, और जलवायु कारक, जैसे-हवा, पानी, मिट्टी और धूप अजैव घटक हैं।

1. **अकार्बनिक पदार्थ** ये विभिन्न पोषक तत्व और यौगिक, जैसे-कार्बन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस, कार्बन डाइऑक्साइड, जल आदि।
2. **कार्बनिक यौगिक** ये प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, खाद, मिट्टी पदार्थ आदि हैं।

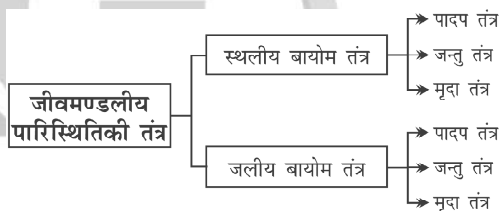
जैव घटक

ये निम्न प्रकार के होते हैं-

1. **उत्पादक** ये क्लोरोफिल युक्त पौधे हैं। जैसे-कोई (शैवाल), घास और पेड़। प्रकाश संश्लेषण के दौरान ये सौर-ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं। चूँकि हरे पौधे अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं, अतः इनको स्वपोषी भी कहते हैं।
2. **परभोक्ता:** ये वे जीव हैं जिनकी भोजन आवश्यकताएं दूसरे जीवों को खाकर पूरी होती है। ये परपोषी या विषमपोषी कहलाते हैं। जो सीधे पौधों (स्वपोषी) का भोजन करते हैं, शाकभक्षी या शाकाहारी कहलाते हैं, (टिड्डा, खरगोश, भेड़, बकरी)। वे प्राणी जो शाकाहारियों को खाते हैं, मांसभक्षी या मांसाहारी कहलाते हैं, जैसे-बाघ, शेर आदि। वे जीव जो पौधों व प्राणियों दोनों का भोजन कर सकते हैं, सर्वाहारी या सर्वभक्षी कहलाते हैं (तिलचट्टा, लोमड़ी, मनुष्य)।
3. **अपघटक जीव-** ये मुख्यतः बैक्टीरिया व फफूँदी (कवक) हैं।

जीवमण्डल : एक पारिस्थितिकी तंत्र

पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषाओं तथा इसके विभिन्न पक्षों का विस्तृत विवरण पिछले अध्ययन में पढ़ चुके हैं। चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र एक आधारभूत कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होती है। जिसके अन्तर्गत जैविक समुदाय, अजैविक संघटक तथा ऊर्जा संघटक के सकल रूप को सम्मिलित करते हैं, तथा निर्धारित समय के परिवेश में इन संघटकों के आपसी अन्तर्सम्बन्धों एवं अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन करते हैं, अतः जीवमण्डल (जिसमें पारिस्थितिकी तंत्र की समस्त विशेषतायें निहित होती हैं) वृहत्तम पारिस्थितिकी तंत्र का उदाहरण है क्योंकि जीवमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र की रचना जैविक संघटक (पादप, मानव सहित जन्तु तथा सूक्ष्म जीव) अजैविक संघटक (स्थल, जल तथा वायु) तथा ऊर्जा संघटक (सौर्यिक ऊर्जा) से होती है तथा ये संघटक वृहदस्तरीय भू-जैव संसाधन चक्रों के माध्यम से अन्तरंग ढंग से आपस में अन्तर्सम्बन्धित हैं।



जीवमण्डल के उपतंत्र

जीवमण्डल की रचना दो प्रमुख तंत्रों से हुई है- (1) पार्थिव बायोम तंत्र तथा (2) जलायी बायोम तंत्र। पार्थिव बायोम तंत्र (स्थलीय बायोम तंत्र) के अन्तर्गत तीन उपतंत्र होते हैं-(i) पादप तंत्र, (ii) जन्तु तंत्र तथा (iii) मृदा तंत्र। ये उपतंत्र आपस में ऊर्जा तथा पदार्थों के संचरण एवं स्थानान्तरण के विभिन्न चक्रीय मार्गों द्वारा अन्तरंग रूप में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। जलीय बायोम तंत्र के अन्तर्गत भी तीन उपतंत्र होते हैं- (i) पादप तंत्र, (ii) जन्तु तंत्र तथा (iii) पोषक तंत्र। जलीय बायोम तंत्र के ये तीन उपतंत्र भी पार्थिव बायोम तंत्र के उपतंत्रों की भांति ऊर्जा तथा पदार्थों के संचरण के चक्रीय मार्गों द्वारा आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

जीवमण्डल के परिवर्तनकर्ता

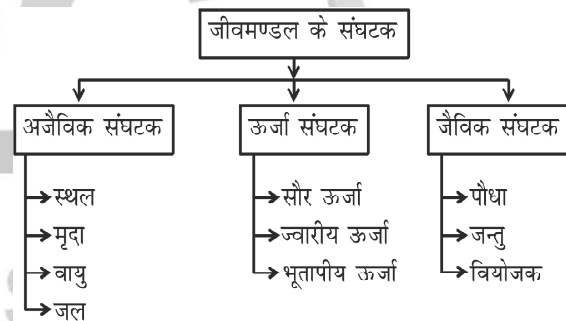
जीवमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र कुछ निश्चित कारकों द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित तथा परिवर्तित होता रहता है। इन कारकों को पारिस्थितिकी तंत्र का रूपान्तरक (Modifiers) कहते हैं। ये रूपान्तरक कारक तीन तरह के होते हैं- (i) भौतिक रूपान्तरक (Physical Modifiers), (ii) रासायनिक रूपान्तरक (Chemical Modifiers) तथा (iii) जीवीय रूपान्तरक (Biological Modifiers)। भौतिक कारक वायुमण्डल के भौतिक गुणों तथा विशेषताओं को प्रभावित करते हैं जो बदले में जलवायु को प्रभावित करते हैं तथा जलवायु अन्ततः पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करती है। भौतिक कारक पारिस्थितिकी तंत्र को तापमान परिवर्तन, जल-प्रवाह, अग्नि, खनन, निर्माण कार्य आदि के माध्यम से भी प्रभावित करते हैं। रासायनिक कारक वायुमण्डल की रासायनिक संरचना को प्रभावित करते हैं। ये परिवर्तन बदले में जलवायु को परिवर्तित करते हैं तथा इस तरह परिवर्तित जलवायु पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करती है। रासायनिक कारक जल तथा मृदा के संगठन को बड़े पैमाने पर परिवर्तित करते हैं और इस तरह परिवर्तित जल तथा मृदा पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करती है। जीवीय कारक यथा: फसल प्रतिरूप, जनसंख्या की विशेषतायें (यहाँ जनसंख्या का तात्पर्य जीवों की संख्या से है), प्रजातियों के घनत्व तथा वितरण में हस्तक्षेप तथा हेराफेरी एवं प्रजाति आनुवंशिकी (Species Genetics) पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं।

जीवमण्डल, पारिस्थितिकी तंत्र एवं पर्यावरण के संघटक

यदि हम समस्त जीवमण्डल को एक पारिस्थितिकी तंत्र मानते हैं तो जीवमण्डल एवं जीवमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र के संघटक एक समान ही होते हैं। इसी तरह विश्वस्तरीय प्राकृतिक पर्यावरण के संघटक भी वही हैं, जो जीवमण्डल तथा जीवमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र के हैं। कुछ लोग वनस्पति तथा प्राणिजगत को ही जीवमण्डल के प्रमुख घटक मानते हैं। निश्चय ही यह अवधारणा संकुचित है। ज्ञातव्य है कि भूतंत्र (Earth System) के दो प्रमुख संघटक होते हैं- जीवित पदार्थ तथा अजीवित पदार्थ। एल. सी. कोल (1958) ने पारिस्थितिकी मण्डल शब्द

का प्रयोग उस पर्यावरण के लिये किया है। जिसमें जीव (वनस्पति तथा जन्तु) रहते हैं तथा उसके साथ (पर्यावरण के साथ) पारिस्थितिकीय क्रिया करते हैं। जबकि कुछ लोग यथा हचिंसन (1970) जीवों के परिवार या समूह के लिये जीवमण्डल का प्रयोग करते हैं। आर० एफ० दासमैन (1976) का मत है कि पारिस्थितिकी मण्डल तथा जीवमण्डल को अलग-अलग रूपों में मानना अविभाज्य (Inseparable) को विभाजित करना है। अर्थात् भौतिक पर्यावरण तथा उसमें रहने वाले जीव एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं कि उनको एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

जीवमण्डल पारिस्थितिकी तंत्र तथा पर्यावरण के तीन प्रमुख संघटक हैं- (i) अजैविक/भौतिक संघटक (ii) ऊर्जा संघटक तथा (iii) जैविक संघटक। ऊर्जा संघटक को भौतिक संघटक के साथ ही सम्मिलित कर लिया जाता है।



आहार शृंखला एवं खाद्य जाल

वनस्पति स्रोत से जीवों की एक शृंखला में इस भोजन हस्तांतरण, अर्थात् बारंबार खाना और खाया जाने, की प्रक्रिया को आहार शृंखला कहते हैं। एक सरल-सी सामान्य आहार शृंखला ऐसे दिखाई जा सकती है-

उत्पादक (Producer) - शाकभक्षी (Herbivorous) - मांसभक्षी (Carnivorous)

जीवों को उदाहरणस्वरूप लेकर, एक साधारण स्थलीय आहार शृंखला ऐसे हो सकती है-

□ घास → हिरन → शेर

□ घास → टिड्डा → मेंढक → सर्प → बाज

साधारण अवस्था में प्रायः कई आहार शृंखलाएँ आपस में जुड़ी होती हैं। अपनी भोजन आदतों के आधार पर एक प्राणी एक से अधिक आहार शृंखलाओं से सम्बन्ध रख सकता है। आहार शृंखलाओं के इस जाल को खाद्य जाल (Food web) कहते हैं। पोषी स्तर: आहार शृंखला में भिन्न चरण या स्तर अलग-अलग पोषी स्तर बनाते हैं। हरे पौधे स्वपोषी, पहला पोषी स्तर है जो सूर्य की विकिरण ऊर्जा को शोषित करते हैं (उत्पादक) और आगे आने वाले दूसरों (परभोक्ता) के लिए उपलब्ध कराते हैं। शाकभक्षी प्रथम परभोक्ता-कीट, खरगोश, रोडेंट, हिरन, पशु आदि जो पौधे खाते हैं, दूसरा पोषी स्तर हैं। वे प्राणी जो शाकभक्षियों को खाते हैं, और द्वितीय परभोक्ता या मांसभक्षी कहलाते हैं, तीसरा पोषी स्तर बनाते हैं। ये सभी बड़ी मांसभक्षियों (तृतीय परभोक्ता - शेर) द्वारा खाए जाते हैं, जो चौथा पोषी स्तर बनाते हैं। ऊँचे पोषी स्तरों के प्राणी अपने भोजन के साथ और भी अधिक विष प्राप्त करते हैं। इसे जैव आवर्धन कहते हैं। कुछ ऊर्जा प्रत्येक पोषी स्तर पर खो जाती है, परन्तु पोषक अवयवों में ऐसी कोई कमी नहीं होती। जब अंततः मृतप्राणी शरीर अपघटन के लिए अपघटकों (Decomposer) के पास आता है, पोषक तत्व वातावरण में मुक्त हो जाते हैं, यहाँ ये दुबारा उपयोग एवं पुनः चक्रण के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। अजैव पर्यावरण (भू-चट्टान, वायु, जल) और जीवों के मध्य पोषक तत्वों के चक्रीय प्रवाह को जीव-भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemical cycle) कहते हैं।

आहार शृंखला

उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक, जीव मण्डल के जैव घटक हैं। उनकी भोजन बनाने की तथा उपभोग सम्बन्धित पारस्परिक क्रियायें, जीव मण्डल का एक अन्य मनोरंजक लक्षण हैं। किसी जीव द्वारा किसी अन्य जीव का उपभोग करने की क्रमबद्ध प्रक्रिया किसी आहार शृंखला का निर्माण करती है। आहार शृंखला के विभिन्न स्तरों पर भोजन का स्थानान्तरण होता है। इन स्तरों को पोषण रीति कहते हैं। किसी क्षेत्र अथवा आवास की आहार शृंखला का अध्ययन करने में हमें विभिन्न जीवों में होने वाली पारस्परिक क्रियाओं तथा उनकी परस्पर निर्भरता का ज्ञान हो जाता है।

आइए हम किसी घास के मैदान में संपन्न हो रही एक सरल आहार शृंखला का अध्ययन करें। यह निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित की जा सकती है -

घास → हिरण → शेर

घास, उत्पादक स्तर दर्शाती है। यह कार्बोहाइड्रेट के रूप में भोजन बनाने हेतु सूर्य प्रकाश का उपयोग करती है। इसका हिरणों द्वारा उपभोग किया जाता है। हिरणों का उपभोग शेर करता है। इस शृंखला में हिरण जैसे जन्तु, जो केवल पौधे खाते हैं, शाकाहारी कहलाते हैं। उपरोक्त आहार शृंखला में हिरण को खाने वाले शेर को मांसाहारी कहते हैं। ऐसे भी जन्तु हैं, जो पौधे और जन्तु, दोनों का ही उपभोग करते हैं। उनको सर्वभक्षी कहते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण मानव है।

अभी हमने तीन चरणों वाली आहार शृंखला पर विचार किया था। इसी घास मैदान में इन्हें अन्य आहार शृंखलाएँ भी संपन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए चार चरणों वाली शृंखला निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित की जा सकती थी-

घास → कीट → मेंढक → पक्षी

आइए देखें कि जीव मण्डल के जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में क्या होता है? तालाबों, झीलों या समुद्र में आहारशृंखला में निम्नलिखित जीव हो सकते हैं-पादप प्लवक तथा प्राणि प्लवक। पादप प्लवक के अन्तर्गत सूक्ष्म पादप तथा जल में तैरते हुए पौधे आते हैं, जबकि प्राणि प्लवक में सूक्ष्म जन्तु तथा स्वतंत्र रूप से तैरते हुए जन्तु होते हैं।

कार्य या शैवाल → छोटे जन्तु → बड़ी मछली

किसी घास के मैदान, वन, खेत या तालाब या किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र या जीव मण्डलों में प्रतिपादित होने वाली आहार शृंखलाएँ आपस में अनेक प्रकार से, जैसे आड़े तिरछे जुड़कर एक जाल सा बनाती हैं। आहार शृंखलाओं के इस जाल को खाद्य जाल कहते हैं।

किसी आहारशृंखला में प्रत्येक जीव कोई विशेष स्थान ग्रहण करता है जैसे कि उपरोक्त आहार शृंखलाओं में कीट या शेर या मछली का स्थान प्रदर्शित किया गया है। कोई जीव एक से अधिक आहार शृंखलाओं में स्थान ग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए हिरण सियार द्वारा खाया जा सकता है और शेर द्वारा भी खाया जा सकता है आहार शृंखला में उत्पादक तथा

उपभोक्ता का स्थान ग्रहण करने वाले जीव पारिस्थितिकी तंत्र या जीव मण्डल को कोई निश्चित संरचना प्रदान करते हैं। इनको पोषण रीति कहते हैं। आइए हम तीन से अधिक पोषण रीति वाली आहार शृंखला के विभिन्न स्तरों का अध्ययन करें। इन्हें चित्र की भांति प्रदर्शित किया जा सकता है।



विभिन्न पोषण रीति वाली कोई आहार शृंखला

क्या आप पहले बताई गई आहार शृंखलाओं में उपरोक्त पोषण रीतियों को पहचान सकते हैं? हम देखते हैं कि इन शृंखलाओं में तीन से अधिक पोषण रीतियाँ हैं। आप आहार शृंखलाओं में मानव को कहाँ रखते हैं? जब हम केवल पौधों का सेवन करते हैं तो शृंखला में केवल उत्पादक तथा उपभोक्ता होते हैं। जबकि माँसाहारी व्यक्तियों की आहार शृंखला में अधिक उपभोक्ता स्तर होंगे, संभवतः प्रथम तथा द्वितीय स्तर के उपभोक्ता।

आहार शृंखला न केवल जीव मण्डल में जैव घटकों की संरचना प्रदर्शित करती है बल्कि दो महत्वपूर्ण प्रकार्यों को भी प्रदर्शित करती है। ये प्रकार्य हैं ऊर्जा एवं पदार्थों का स्थानान्तरण। यही दो मूल प्रकार्य जीव मण्डल को गतिशीलता प्रदान करते हैं, यह कथन किसी छोटे पारिस्थितिकी तंत्र में प्रतिपादित हो रही आहार शृंखला के लिए भी सत्य है।

किसी आहारशृंखला में यह स्थानान्तरण शिकार एवं भक्षक के सम्बन्ध की प्रक्रिया सम्पन्न होने के दौरान होता है। ऊर्जा एवं पदार्थों का स्थानान्तरण विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में होता है, जैसे-वन, घास का मैदान, पार्क, बाग, तालाब, झील, समुद्र, यहाँ तक कि जीव जलशाला भी। यह जीवों के साइज अथवा स्वरूप या फिर भौतिक पर्यावरण के घटकों पर किसी भी प्रकार

निर्भर नहीं करता। आइये, हम इन प्रक्रियाओं का अध्ययन करें जिससे हम जीव मण्डल की कार्य विधियों की वास्तविकताओं को भली-भाँति समझ सकें।

ऊर्जा का प्रवाह

आपको ज्ञात है कि आहार शृंखला वास्तव में खाद्य पदार्थ का क्रमबद्ध स्थानान्तरण है। आइए हम पहले यह पता लगाएँ कि जीवमण्डल के जैव घटकों में खाद्य पदार्थ कहाँ से आता है और किस प्रकार जीवों द्वारा पौधों तथा अन्य जीवों का भक्षण करने के दौरान इसका स्थानान्तरण होता है। आप पढ़ चुके हैं किस प्रकार हरे पौधे भोजन तैयार करते हैं। यह प्रारम्भिक चरण है, जिसमें पर्यावरण से ऊर्जा, जैव घटकों में प्रवेश करती है। केवल पौधों में ही क्लोरोफिल नामक हरित वर्णक होता है, जिसके द्वारा उनमें सौर ऊर्जा का अंतर्ग्रहण करने की क्षमता होती है। पृथ्वी तक पहुँचने वाली कुल सूर्य ऊर्जा का लगभग 1% पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में उपभोग होता है। इस ऊर्जा को अंतर्ग्रहित करने के बाद पौधे इसे रासायनिक ऊर्जा में रूपांतरित कर देते हैं, जो कार्बोहाइड्रेट के रूप में भण्डारित हो जाती है। आपको ज्ञात होगा कि पौधे अपनी उपापचयी प्रक्रियाओं हेतु ऊर्जा का उपभोग करते हैं। इस ऊर्जा का मुख्य अंश श्वसन हेतु उपयोग हो जाता है। वे ऊर्जा का उपयोग वृद्धि अथवा ऊतक निर्माण के लिए भी करते हैं। कुछ ऊर्जा उपयोग नहीं होती है तथा ऊष्मा के रूप में मुक्त हो जाती है। पौधों का शाकाहारियों द्वारा भक्षण होता है। इन शाकाहारियों को हम प्रथम स्तर का उपभोक्ता भी कह सकते हैं। खाद्य में भण्डारित रासायनिक ऊर्जा भोजन के साथ ही पौधों से शाकाहारी जन्तुओं तक स्थानान्तरित हो जाती है। ये जन्तु, इस ऊर्जा के एक हिस्से का व्यय अपनी उपापचयी प्रक्रियाओं तथा वृद्धि पर करते हैं। इसके अतिरिक्त शाकाहारी कुछ ऊर्जा का उपयोग श्वसन में भी करते हैं। इस ऊर्जा का कुछ अंश उपयोग नहीं हो पाता है जो इन जन्तुओं द्वारा ऊष्मा के रूप में मुक्त हो जाता है, उसे इस प्रक्रम में हुई ऊर्जा हानि माना जाता है।

ऊर्जा स्थानान्तरण से हम निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं-

1. ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में रूपांतरित हो जाती है। आपने देखा कि प्रकाश संश्लेषण के दौरान प्रकाश ऊर्जा,

रासायनिक रूप में परिवर्तित हो जाती है। हम हरे पौधों को उत्पादक कहते हैं। क्या वे वास्तव में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं? यह सत्य नहीं है। वास्तव में पौधे केवल ऊर्जा को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करते हैं, अतः ऊर्जा के संदर्भ में हम इन पौधों को परिवर्तक या ट्रांसड्यूसर कह सकते हैं।

2. आहार शृंखला में किसी पोषण रीति से अगली पोषण रीति तक ऊर्जा का निरन्तर स्थानान्तरण होता रहता है। प्रत्येक पोषण रीति या स्तर पर जीवों द्वारा ऊर्जा का उपयोग अपनी वृद्धि के लिए भी होता है। कुछ ऊर्जा की ऊष्मा के रूप में हानि भी हो जाती है तथा इसका उपयोग नहीं हो पाता है। यदि हम सभी पोषण रीतियों में होने वाली ऊर्जा तथा ऊष्मा के रूप में मुक्त ऊर्जा की मात्रा की गणना करें तो आप पायेंगे कि इस प्रकार ऊर्जा की कुल हानि का परिमाण काफी अधिक है।
3. हम देखते हैं कि प्रत्येक स्थानान्तरण में ऊर्जा की हानि होती है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक अगले चरण अथवा पोषण रीति के लिए उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा, उत्पादक स्तर पर उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा से क्रमशः कम होती जाती है। विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों में भिन्न-भिन्न आहार शृंखलाओं एवं ऊर्जा स्थानान्तरणों के अध्ययन से ऊर्जा स्थानान्तरण के सम्बन्ध में एक रोचक तथ्य उभर कर आया है। सामान्यतः ऊर्जा में कमी 10% के नियम के अनुसार होती है। प्रत्येक चरण पर उपलब्ध ऊर्जा उससे पहले के चरण पर उपलब्ध ऊर्जा का 10% होती है।

आप यह पढ़ चुके हैं कि ऊर्जा एक रूप दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाती है। भोजन शृंखला में इसके स्थानान्तरण के दौरान सदैव कुछ ऊर्जा की हानि होती है। कुछ उपलब्ध ऊर्जा का एक बहुत बड़ा अंश प्रयुक्त नहीं होता तथा इसे जीव द्वारा पर्यावरण में ऊष्मा के रूप में मुक्त कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि जैव घटकों में ऊर्जा का प्रवाह एक ही दिशा में होता है। यह अजैव पर्यावरण के माध्यम से जीवों में प्रवेश करती है तथा ऊष्मा के रूप में मुक्त हो जाती है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं कि ऊष्मा के रूप में मुक्त ऊर्जा पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में दोबारा उपयोग नहीं हो सकती है। क्या आप इस

कथन से सहमत होंगे कि जीवमण्डल में ऊर्जा स्थानान्तरण, ऊष्मा गतिकी के सिद्धांत के अनुसार होता है। आहार शृंखला की ऊर्जा गतिकी को एक अन्य विधि से भी समझाया जा सकता है। इसमें ऊर्जा स्थानान्तरण का पिरामिड के रूप में ग्राफीय निरूपण किया जाता है तथा इसे पारिस्थितिकी पिरामिड कहते हैं। ये पिरामिड पोषण रीति की संरचना भी प्रदर्शित करते हैं।

पारिस्थितिकी पिरामिड विभिन्न स्तर प्रदर्शित करते हैं। पिरामिड का आधार उत्पादकों को प्रदर्शित करता है और जैसे-जैसे ऊपर चलते जाते हैं, इसका आकार पतला होता जाता है जो क्रमशः अगली पोषण रीति या स्तर को दर्शाता है। माँसाहारी जन्तु पिरामिड की चोटी पर होते हैं। पारिस्थितिकी पिरामिड आहार शृंखला को प्रदर्शित करते हैं। इन पिरामिडों को प्रत्येक पोषण रीति पर उपलब्ध जीवों की कुल संख्या के आधार पर भी बनाया जा सकता है। (संख्या का पिरामिड)। इनको कुल जैव द्रव्यमान (जीव का द्रव्यमान या भार) के आधार पर भी बना सकते हैं। अर्थात् जीवभार पिरामिड, ऊर्जा पिरामिड बनाया भी सम्भव है जिसमें प्रत्येक पोषण रीति पर ऊर्जा स्थानान्तरण का ग्राफ दर्शाया गया हो।

आहार शृंखलाओं एवं ऊर्जा स्थानान्तरण का अध्ययन करने के पश्चात्, आपको स्पष्ट हो जायेगा कि इनका हमारी एवं अन्य जीवों की भोजन सम्बन्धी आदतों से निकट सम्बन्ध है। ऊर्जा स्थानान्तरण के बारे में अपने ज्ञान के आधार पर क्या आप आहार शृंखला में स्वयं को और अधिक लाभकारी स्थिति में रख सकते हैं। आपके विचार में आहार शृंखला में किस स्थान पर रहने पर आपको अपने भोजन से सर्वाधिक ऊर्जा प्राप्त होगी?

हम पहले ही यह चर्चा कर चुके हैं कि आहार शृंखला में ऊर्जा स्थानान्तरण के दौरान उत्पादक स्तर पर अधिक ऊर्जा उपलब्ध होती है। क्या हम यह कह सकते हैं कि आप इस स्तर के जितने निकट होंगे आपको उतनी ही अधिक ऊर्जा (कैलोरी) आपको उपलब्ध होगी।

अतः अब आप यह मान सकते हैं कि शाकाहारी आदतों से हमें कुल ऊर्जा अधिक उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि शृंखला में दाहिने हाथ की ओर स्थान पाने वाले पशुओं को कम ऊर्जा उपलब्ध होगी। यदि आप उन पशुओं को खाते हैं जो पेड़ पौधे खाते हैं, तो क्या आपको सीधे ही वनस्पति उत्पाद खाने की तुलना में कम ऊर्जा नहीं मिलेगी?

आइए, हम आहार शृंखला के एक अन्य पक्ष का अध्ययन करें। आप जानते हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र एवं जीवमण्डल में भी आहार शृंखला में तीन या अधिक चरण होते हैं। ऊर्जा स्थानान्तरण के बारे में अपनी जानकारी के आधार पर आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अधिक चरणों का अर्थ है कि आहार शृंखला के दाहिने सिरे पर स्थित जीव को ऊर्जा की कम मात्रा उपलब्ध होगी।

क्योंकि मानव में सोच समझकर निर्णय लेने की क्षमता है। अतः वह आहार शृंखला में आसानी से फेर बदल करके अपने लिए अधिक अच्छा स्थान सुनिश्चित कर सकता है। हो सकता है कि इस प्रक्रिया में आहार शृंखला इस प्रकार अव्यवस्थित हो जाए कि खाद्य जाल में सम्पन्न हो रही अन्य आहार शृंखलायें प्रभावित हो जायें। मानवीय प्रक्रियाओं द्वारा आहार शृंखलाओं को छोटा करने के प्रयास के कारण पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता है और अन्ततः जीव मण्डल में भी असंतुलन उत्पन्न होता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रसिद्ध सहारा रेगिस्तान शाकाहारियों की लगातार बढ़ती हुई संख्या तथा उनके द्वारा आवश्यकता से अधिक घास चरने के कारण बना था। इसका कारण था रोमनों द्वारा शेरों का पकड़ा जाना, जिससे शाकाहारियों का भक्षण करने वालों की संख्या कम हो गई। राजस्थान के अधिकांश भागों में रेगिस्तान में परिवर्तित हो जाने का कारण शाकाहारियों द्वारा अधिक चरना माना जाता है।

आइए हम किसी आहार शृंखला, 'घास-हिरण-शेर', का उदाहरण लें जिस पर हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं। यदि हम समस्त शेरों को हटा दे या मार डालें, तो क्या होगा? तब हिरणों की संख्या बढ़ जायेगी क्योंकि उनको खाने वाला कोई नहीं होगा? हिरणों की बढ़ी हुई संख्या का परिणाम होगा उत्पादकों (घास) का अधिक उपभोग। संख्या बहुत बढ़ जाने पर ये समस्त उत्पादकों को समाप्त तक कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि समस्त उत्पादकों को समाप्त तक कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि समस्त हिरणों को हटा दिया जाय तब शेरों की संख्या कम हो जायेगी, क्योंकि उनको पर्याप्त भोजन उपलब्ध न होगा। यदि हिरण अथवा शेर का खाद्य जाल की अन्य आहार शृंखलाओं में भी स्थान हो तो किसी एक को भी हटाने से पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित हो जायेगा। शेर अन्य जीवों का भी भक्षण प्रारम्भ

कर सकते हैं, जैसे पालतू पशु या मानव। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि उत्पादकों को हटाने या समाप्त कर देने पर आहार शृंखला की कार्यप्रणाली तथा जीवमण्डल पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

आहार शृंखला का एक अन्य रोचक पक्ष यह जानकारी है कि किस प्रकार जाने अथवा अनजाने कुछ हानिप्रद रसायन इस शृंखला के द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर लेते हैं। हम अपनी फसलों को रोग तथा कीटों से बचाने हेतु अनेक कीटनाशक तथा अन्य रसायनों का उपयोग करते हैं। ये रसायन या तो पानी में घुल जाते हैं तथा मृदा से रिसकर अंततः भूमिगत जलस्तर तक पहुँच जाते हैं, या मृदा द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं या मृदा में से पौधों द्वारा जल एवं खनिजों के साथ-साथ अवशोषित कर लिए जाते हैं। इस प्रकार से आहार शृंखला में प्रवेश करते हैं। पोषण रीति के एक स्तर से दूसरे स्तर में स्थानान्तरण के दौरान प्रत्येक स्तर पर ये हानिप्रद रसायन सान्द्रित होते जाते हैं।

अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि मानव शरीर में इन रसायनों की मात्रा उन जीवों से अधिक है जो आहार शृंखला के प्रारंभिक स्तर पर हैं। मच्छरों को मारने के लिए डी.डी.टी. का उपयोग इसका एक उदाहरण है। मानवों में इसकी सान्द्रता सबसे अधिक है।

क्या आप अनुभव करते हैं कि खाद्य पदार्थ के स्थानान्तरण का अध्ययन हमें खाद्य की कमी की समस्या हल करने में किसी प्रकार सहायता कर सकेगा। क्या हम फसलों को उन्नत कर सकते हैं जिससे कि वे सौर ऊर्जा को अधिक क्षमता से प्रग्रहित कर सकें? वैज्ञानिक इस दिशा में कार्य कर रहे हैं जिससे कि नई किस्मों को विकसित करके खेतों के पारिस्थितिकी तंत्र को उन्नत किया जा सके।

पदार्थों का पुनः चक्रण

आपको ज्ञात है कि पौधों द्वारा मृदा में से पानी के साथ खनिज अवशोषित किये जाते हैं तथा CO_2 वायु से प्राप्त की जाती है जिसका उपयोग प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में होता है। इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले मुख्य तत्व अथवा पदार्थ, C, N, O, S, P तथा जल हैं। ये पदार्थ पारिस्थितिकी तंत्र के उत्पादक स्तर में प्रवेश करने के पश्चात् दूसरे स्तरों पर स्थानान्तरित कर दिए जाते हैं। इन पदार्थों का स्थानान्तरण एवं परिवहन मृदा, जल, वायु तथा जैव जीवों के द्वारा होता है। इन रसायनों का पारिस्थितिकी

तंत्र तथा अन्ततः जीव मंडल में पुनः चक्रण को जैव भू-रसायन चक्र कहते हैं। ऊर्जा की भांति ये रसायन पारिस्थितिकी तंत्र से लुप्त नहीं होते हैं। अपघटकों द्वारा पौधों एवं जन्तुओं के मृत शरीर को अपघटित किये जाने पर ये पदार्थ पुनः पोषण भंडार में मुक्त कर दिए जाते हैं। पौधों द्वारा पुनः अवशोषित किये जाने पर ये तत्व पुनः परिवहन में आ जाते हैं। इस प्रकार पदार्थों के पुनः चक्रण में अपघटक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

C, N जैसे तत्वों तथा अन्य रसायनों में प्रत्येक के पारिस्थितिकी तंत्र या जीवमण्डल में पुनः चक्रण के संदर्भ में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक रासायनिक तत्व उपयोग करने योग्य रूप में उपलब्ध होना चाहिए, उदाहरण के लिए कार्बन, कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में। अन्यथा इसे जीवों द्वारा उपयोग करने योग्य रूप में परिवर्तित करना पड़ेगा, जिसकी क्षमता सम्भवतः कई जीवों में न हो। एक बार अवशोषित किए जाने के बाद पदार्थ परिवर्तित होता है तथा उसे पुनः पोषण भंडार में वापस मुक्त कर दिया जाता है। आपको निम्नलिखित बातों का ज्ञान होना आवश्यक है-

1. स्रोत।
2. किस रूप में उपलब्ध है।
3. पुनः चक्रण के दौरान तत्व किस रूप में परिवर्तित होता है।
4. तत्व, पोषण भंडार में किस रूप में मुक्त होता है।

नाइट्रोजन चक्र में भाग लेने वाले जीव	
भूमिका/क्रिया	जीव
नाइट्रोजन स्थिरीकरण	राइजोबियम, नील-हरित शैवाल
अमोनिकरण	नाइट्रोसोमोनास
(अमोनिया से नाइट्रेट)	(नाइट्रीकारी जीवाणु)
नाइट्रीकरण	नाइट्रोबैक्टर
विनाइट्रीकरण	सूडोमोनास
(नाइट्रेट से स्वतंत्र नाइट्रोजन)	(विनाइट्रीकारक जीवाणु)

पदार्थों के चक्र

H, N, O, C, P तथा K जैसे पोषक तत्वों की जैव जीवों को अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है तथा इन्हें असूक्ष्म पोषक तत्व

कहते हैं। कुछ अन्य पोषक तत्वों की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है जैसे Mn, Zn आदि। इन्हें सूक्ष्म पोषण तत्व कहते हैं। आइए हम कुछ सामान्य पोषक तत्वों, जैसे-जल, C, N तथा O के चक्र का अध्ययन करें।

जल चक्र

आपको ज्ञात है कि जल पर्यावरण में परिवहित होता है। इसको जलीय चक्र कहते हैं। अपने पहले भी जल चक्र का अध्ययन किया है, जल में मुख्य तत्व हाइड्रोजन है जिसका चक्रण पानी के यौगिक रूप में प्रवाहित होने के साथ होता है। आपको याद होगा कि जलाशयों (सागर, समुद्र, झील, नदियाँ) तथा जैव जीवों के शरीर की सतह से जल का लगातार वाष्पन होता रहता है। पौधों में वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल हानि वाष्पन का प्रमुख स्रोत है। इस प्रकार वाष्पित जल वायु में जल वाष्प के रूप में उपस्थित रहता है। निम्न ताप पर ये वाष्प कण संघनित होकर जल की बूंद बनाते हैं। ये बूंदें वर्षा अथवा हिम रूप में बरसती हैं और इस प्रकार जल पुनः पृथ्वी पर वापस आ जाता है। जलचक्र द्वारा जीवों को शुद्ध जल उपलब्ध होता है।

कार्बन चक्र

कार्बन जैव जीवों का मूल घटक है। यह कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन तथा न्यूक्लिक अम्लों के रूप में होता है। कार्बन का स्थानान्तरण आहार शृंखला के माध्यम से होता है। गैसीय रूप में कार्बन का मुख्य भण्डार वायुमण्डल है, जबकि सागर, जैव कार्बन का प्रमुख भण्डार है। वायुमण्डल में यह कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में प्राप्त है जो लगभग 0.03-0.04% है। आप अध्ययन कर चुके हैं कि पौधों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करने की क्षमता होती है। कार्बोहाइड्रेट खाद्य पदार्थ के रूप में एक पोषण रीति के जन्तुओं से दूसरे स्तर के जन्तुओं में स्थानान्तरित होता रहता है। अपघटकों द्वारा यह फिर से वायुमण्डल एवं जल भण्डारों में वापस आ जाता है। वायुमण्डल एवं जल भण्डारों के मध्य CO₂ का विनिमय निरंतर चलता रहता है। ज्वालामुखी उद्गार से भी वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड मुक्त होती है।

नाइट्रोजन चक्र

नाइट्रोजन भी जैव जीवों के ऊतकों का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह प्रोटीनों, एमीनोअम्लों तथा न्यूक्लिक अम्लों का आवश्यक घटक है। वायुमण्डल, नाइट्रोजन का समृद्ध भण्डार है। इसमें लगभग 78% नाइट्रोजन होती है जो आण्विक रूप में उपस्थित रहती है। जल भंडारों में भी नाइट्रोजन होती है। यह जैव जीवों द्वारा इसके तत्व के रूप में उपयोग में नहीं लाई जा सकती है। इसको उपयोग करने योग्य रूप में परिवर्तन करना आवश्यक है जैसे नाइट्रेट। यह मुख्यतः कुछ जीवों द्वारा सम्भव किया जाता है। वायुमण्डल से नाइट्रोजन का जीवमण्डल के जैव घटकों में विशेष प्रकार के जीवाणुओं द्वारा स्थितीकरण तथा स्वांगीकरण होता है।

अन्य प्रकार के जीवाणु नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में समर्थ नहीं हैं। परंतु कुछ नील-हरित शैवालों में भी स्थिरीकरण का गुण होता है। यह शैवाल धान के खेतों में भी पाई जाती है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु फलीदार फसल के पौधों की जड़ों की गांठों में पाये जाते हैं। कुछ अफलीदार पौधों जैसे एलनस, ग्रीकग्रां भी नाइट्रोजन स्थितीकरण करते हैं। मृत पौधों एवं जन्तुओं के शरीर का सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन प्रक्रिया के माध्यम से नाइट्रोजन वायुमण्डल में पुनः मुक्त हो जाती है मृदा में स्थित नाइट्रेट भी पौधों द्वारा अवशोषित किये जाते हैं। जीवाणु में उपस्थित नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, वायुमण्डलीय एवं औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा भी हो सकता है। आजकल औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा स्थिरीकृत नाइट्रोजन की मात्रा तथा जैव प्रक्रियाओं द्वारा स्थिरीकृत नाइट्रोजन की मात्रा के लगभग बराबर हो गई है। जीव मण्डल में नाइट्रोजन चक्र में निम्नलिखित महत्वपूर्ण चरण होते हैं-

वायुमण्डल की नाइट्रोजन → नाइट्रोजन
स्थिरीकरण तथा स्वांगीकरण → विनाइट्रीकरण →
नाइट्रीकरण → अमोनीकरण

वायुमण्डल की नाइट्रोजन की स्थिरीकरण नाइट्रेटों या नाइट्राइटों के रूप में होता है। इसका अमोनीकरण सूक्ष्म जीवों

द्वारा होता है। एक अन्य प्रकार के सूक्ष्मजीव नाइट्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा इन्हें नाइट्रेटों तथा नाइट्राइटों में परिवर्तित करने में तथा विनाइट्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा अधिक नाइट्रोजन के रूप में परिवर्तित करने में सहायता करते हैं।

जीवमण्डल में नाइट्रोजन चक्र को एक आदर्श चक्र माना जाता है क्योंकि यह चक्र वायुमण्डल तथा जल भण्डारों में नाइट्रोजन की कुल मात्रा को अपरिवर्तित रखता है। NPK तथा यूरिया जैसे नाइट्रोजन युक्त नाइट्रोजन युक्त रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से भी मृदा में पोषक तत्व तथा नाइट्रोजन चक्र को बनाये रखने में सहायता मिलती है। आजकल नाइट्रोजन का औद्योगिक उत्पादन तथा उर्वरकों का उपयोगी तीव्र दर से बढ़ रहा है, यह दर विनाइट्रीकरण की दर से कहीं अधिक है। इस कारण आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन अधिकाधिक जल भण्डारों में पहुंच रही है। नदियों तथा झीलों में पहुंचने वाली आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन बहुधा शैवाल तथा अन्य वनस्पति प्लवकों की वृद्धि को बढ़ावा देती है और वृद्धि पंख मत्स्य तथा कवचप्राणियों जैसे महत्वपूर्ण जन्तुओं की कीमत पर होती है। अन्य जलीय जीवों को भी इससे हानि पहुंचती है क्योंकि जल में ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है।

ऑक्सीजन चक्र

आपको ज्ञात है कि वायुमण्डल के गैसीय घटकों का लगभग 21% ऑक्सीजन है। जल भण्डारों में यह पानी में घुली हुई स्थिति में होती है जो जलीय जीवों को जीवित रखने में सहायता करती है। ऑक्सीजन, CO_2 तथा H_2O के रूप में यौगिक रूप में भी जैव शरीरों में प्रवेश तथा निर्गम करती है। जीवमण्डल का ऑक्सीजन उपलब्ध करने वाले प्रमुख स्रोत हरे पौधे हैं। आप जानते हैं कि ऑक्सीजन, प्रकाश संश्लेषण का सह-उत्पाद है। समस्त जीव, पौधे, जन्तु तथा अपघटक भी श्वसन हेतु वायुमण्डल में उपलब्ध ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया का सह-उत्पाद CO_2 , वायुमण्डल में मुक्त की दी जाती है। कोयला, लकड़ी का उपयोग करते हैं। ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड का अभूतपूर्ण संतुलन बनाये रखने में तथा इन दोनों चक्रों में जीव प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ, जैसे-फॉस्फोरस, सल्फर, पोटेशियम भी जीवमण्डल के जैव एवं अजैव घटकों के मध्य चक्रण करते हैं। उपरोक्त चक्र जीवमण्डल के प्रकार्यों के बारे में महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करते हैं - (1) ऊर्जा के विपरीत ये पदार्थ जीवमण्डल के जैव एवं अजैव घटकों के मध्य चक्रण करते रहते हैं, (2) जीवमण्डल में चक्रण करते हुए विभिन्न रासायनिक पदार्थों की मात्रा लगभग स्थिर बनी रहती है।

कभी-कभी मानव द्वारा किये गये कुछ कार्यों के परिणामस्वरूप

पदार्थों के इस पुनः चक्रण में कुछ गतिरोध उत्पन्न हो जाते हैं। रसायनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग तथा ऐसी मशीनों का प्रचालन जिनमें पूर्ण दहन नहीं होता, आदि जैसे अनेक कार्यों के परिणामस्वरूप ये चक्र अचक्रीय हो सकते हैं। इसका परिणाम आहार शृंखला में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है। हमें आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाने तथा औद्योगिक विकास में सम्बन्धित निर्णय लेने में पर्यावरण के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिये।



जैव विविधता (BIODIVERSITY)



अध्याय दो में हमने पारिस्थितिक तंत्र के बारे में विस्तृत अध्ययन किया। जिसमें पारिस्थितिक तंत्र के वृहद स्वरूप को जैवमण्डल की संज्ञा दी गयी। जिसमें विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र तथा भिन्न पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न जीव-जन्तु, विभिन्न वनस्पतियाँ और विभिन्न समुदाय का निवास होता है। इसी विविधता को जैव विविधता कहते हैं। अर्थात् किसी भी पारिस्थितिक तंत्र अथवा बायोम में मिलने वाले पौधों एवं जन्तुओं की प्रजातियों की विविधता को जैव विविधता (Biodiversity) कहते हैं।

जैव विविधता के अन्तर्गत उसकी अवधारणाओं, संकल्पनाओं, प्रकारों उससे मिलने वाले लोगों, उसके क्षय होने के कारणों, तथा उसके संरक्षण सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करते हैं।

अर्थ एवं परिभाषा

जैव विविधता जीवन की भिन्नता की श्रेणी है। यह अलग-अलग पारिस्थितिक तंत्र में मौजूदा जीवों की विविधता मापदण्ड या आकलन है। यह एक स्थान, जैवमण्डल या ग्रह में आनुवांशिक विविधता, पारिस्थितिकीय विविधता और प्रजातिक विविधता को उल्लिखित करना है।

‘जीव विविधता’ शब्द का प्रथम प्रयोग वन्य जीव वैज्ञानिक एवं संरक्षण ‘रेमण्ड एफ० दासमान’ ने संरक्षण को प्रोत्साहित एवं समर्थित पुस्तक ‘ए डिफरेंट टाइप ऑफ कंट्री’ (A Different type of Country) में किया था। इस शब्द को व्यापक रूप से एक दशक के बाद तक स्वीकारा गया जब 1980 के दशक में विज्ञान और पर्यावरण की नितियों का निर्माण शुरू

हुआ। ‘थामस लवज्वाय’ (Thomas lovejoy) ने बाद में इस शब्द को ‘कन्जर्वेशन बायोलॉजी’ में वैज्ञानिक समुदाय को परिचित कराया। इस समय थामस लवज्वाय और अन्य प्रमुख संरक्षण वैज्ञानिकों ने जैविक विविधता शब्द के प्रयोग का समर्थन और प्रोत्साहित किया।

जैवमण्डल आगार

भौतिक आवासों तथा उसके अन्तर्गत रहने वाले पौधों तथा वन्य जीवों के संरक्षण के पूर्णतया संरक्षित क्षेत्रों को जीवमण्डल आगार (Biosphere recourse) कहते हैं। यह जैवविविधता के संरक्षण एवं उसकी वृद्धि के प्रमुख साधन है।

जबकि ‘जैव विविधता’ शब्द की रचना ‘वल्टेर जी. रोजन’ के द्वारा की गयी। इसी के समानान्तर अमेरिका में एक शब्द “प्राकृतिक विरासत” है। संरक्षण के तौर पे ये जैव विविधता से ज्यादा पहले और ज्यादा लोकप्रिय है। ये शब्द जैव विविधता से ज्यादा व्यापक है जिसमें भू-विज्ञान और भू-स्थलाकृतियाँ भी शामिल है।

“किसी निश्चित क्षेत्रा की प्रत्येक प्रजाति में जननिक विषमता के साथ-साथ विभिन्न प्रजातियों की विविधता को जैव विविधता कहते हैं”।

(सी.जे.बैरो)

“जैवविविधता किसी भी प्रदेश में जीन, प्रजातियों तथा पारिस्थितिक तंत्रों का समग्र रूप है”।

(संयुक्त एवं पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP))